नागार्जुन की हिंदी कविताओं में प्रकृति

(जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में एम.फिल. उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध)

शोध निर्देशक
डॉ. ओमप्रकाश सिंह

शोधार्थी
दिनकर सिंह

भारतीय भाषा केंद्र
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली–110067

2005

नागार्जुन की हिन्दी कविताओं में प्रकृति

(जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में एम.फिल. उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध)

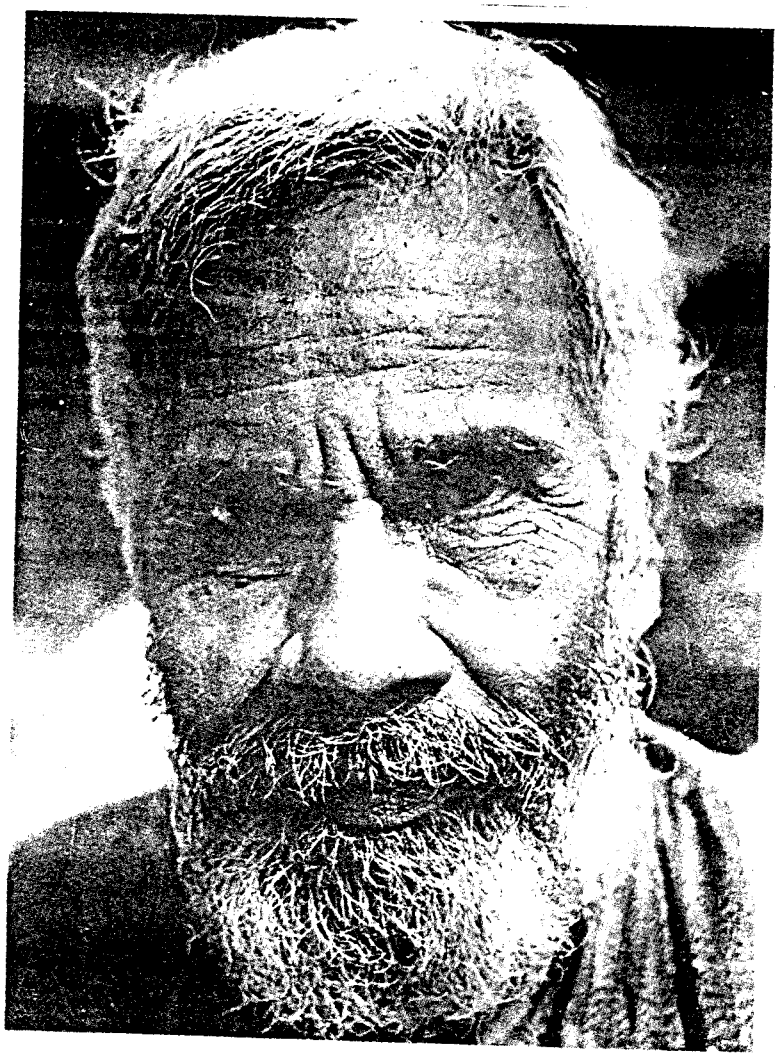

भारतीय भाषा केंद्र

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली–110067

2005

सादर

डॉ. ओमप्रकाश सर को

नागार्जुन की हिंदी कविताओं में प्रकृति

(जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में एम.फिल. उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध)

शोध निर्देशक
डॉ. ओमप्रकाश सिंह

शोधार्थी
दिनकर सिंह

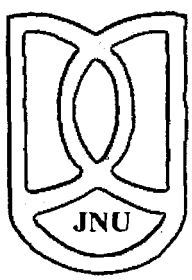

भारतीय भाषा केंद्र
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली–110067

2005

CENTRE OF INDIAN LANGUAGE
SCHOOL OF LANGUAGE, LITERATURE AND CULTURE STUDIES
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY

Dated 29/7/2005

DECLARATION

I declare that the work done in this dissertation entitled "**Nagarjun Ki Hindi Kavitaon Mein Prakriti" ("Nature in Hindi Poems of Nagarjun")** by me is an original work and has not been previously submitted for any other degree in this or any other Univeristy/Institution.

Dinkar Singh
(Research Scholar)
DINKAR SINGH

Dr. Om Prakash Singh
(Supervisor)
CIL/SLL&CS/JNU

Prof. Mohd Shahid Husain
(Chairperson)
CIL/SLL&CS/JNU

अनुक्रम

भूमिका i - v

अध्याय – एक 1 – 19

आधुनिक काव्य में प्रकृति–चित्रण और नागार्जुन

अध्याय – दो 20 – 70

नागार्जुन के काव्य में प्रकृति के विविध रूप

(क) प्रकृति का सीधा–सादा रूप

(ख) प्रकृति का दृश्यात्मक वर्णन

(ग) परंपरा और नए प्रयोग

(घ) प्रकृति और मानव जीवन के विविध रूप

अध्याय – तीन 71 – 114

नागार्जुन के प्रकृति : चित्रण का वैशिष्ट्य

(क) ग्रामीण जीवन और प्रकृति

(ख) जीवनानुभव और प्रकृति

(ग) प्रकृति वर्णन में नवीनता

(घ) नागार्जुन और उनके समकालीन कवि : प्रकृति चित्रण के वैशिष्ट्य के संदर्भ में

अध्याय – चार 115 – 121

उपसंहार

संदर्भ ग्रंथ सूची 122 – 126

.....

भूमिका

बहुत पहले बचपन में मैंने एक कहानी पढ़ी थी – 'भेड़ और भेड़िए', शायद ऐसा ही कुछ उसका शीर्षक था। कहानी के लेखक थे हरिशंकर परसाई। कहानी भी समय बीतने के साथ भूल गई और लेखक भी। फिर, अचानक कई साल बाद मुझे 'इलाहाबाद' में एक किताब दिखी, जिसका शीर्षक था – 'दो नाक वाले लोग'। शीर्षक पढ़कर ही गुदगुदी हुई। सोचा, यह कैसा नाम है – दो नाक वाले लोग ? किताब हाथ में लेकर उलटने–पुलटने लगा कि इसी बीच किताब के लेखक पर नज़र गई। लेखक का नाम कुछ कुछ परिचित लगा – हरिशंकर परसाई। हरिशंकर तो याद नहीं आया लेकिन परसाई से लगता था कि इन्हें जानता हूँ या कहीं इनके बारे में पढ़ा हूँ। जबकि दोनों ही बातें गलत थी। कुछ दिनों के बाद मुझे याद आया कि इनकी कहानी पढ़ा था कभी। इस तरह परसाई से एक रिश्ता–सा महसूस होने लगा और 'दो नाक वाले लोग' खरीदकर पढ़ लिया। बस, सिलसिला शुरू हो गया और भी इनकी कुछ रचनाएँ खरीद लीं, कुछ को पढ़ा भी, कुछ नहीं भी। लेकिन व्यंग्य की ताकत का एहसास हो गया। व्यंग्य मुझे प्रिय लगने लगा। आगे, जब नागार्जुन की कविता पढ़ा तो ऐसा लगा परसाई को ही पढ़ रहा हूँ। वही बेबाकी, दो टूक सच्चाई, आडम्बर की बेपर्दगी, दोगलेपन–दोमुँहेपन का मखौल – काफी कुछ वैसा ही लगा। तब से नागार्जुन मन को जँचने लगे। सबसे बड़ा कारण था कि ये आसानी से समझ में आ जाते थे, बिना किसी आलोचकीय पुस्तक का सहारा लिए हुए। यह एक पक्ष है। दूसरा पक्ष है – मेरा गाँव, जो एक बहुत बड़े (35 वर्ग किमी.) क्षेत्र में फैले 'ताल' के किनारे है। यह उत्तर–प्रदेश का सुप्रसिद्ध 'सुरहा ताल' है। मेरा बचपन यहीं बीता है। इसलिए बड़ी स्वाभाविक बात है कि मेरे बीते जीवन में प्रकृति का बहुत अहम् स्थान रहा

है। दूर–दूर तक फैले बड़े–बड़े खेतों की हरियाली, विशालकाय तालाब उसमें खिले कमल के फूल को देखकर और उसकी नाल को खाकर, उससे खेलकर मैं बड़ा हुआ। दिन की दुपहरी, तपती धरती पर नहीं, आम और नीम पर बिताई है। खेतों में घास नोचना, उड़द की लताएँ उखाड़ना, मक्के की रखवाली करना, बाँस की पत्ती तोड़ना और बेकार हो चुके अमरूद, केले का तना काटना – ये सब दिनचर्या में शामिल थे। लिहाजा प्रकृति से मेरा अटूट और अभिन्न लगाव है। नागार्जुन को पढ़ते समय जब मैंने पाया कि इनमें जितना व्यंग्य है, प्रकृति भी उतनी ही है तो बड़ा सुखद एहसास हुआ। मुझे नागार्जुन पूर्ण कवि लगे। मेरी रुचि के दोनों रूप–व्यंग्य और प्रकृति एक साथ अपने पूरे रंग में यहाँ मिले। शोध की नज़र से जब नागार्जुन पर विचार किया, कुछ पढ़ा और कुछ लाइब्रेरियाँ देखीं तो महसूस हुआ कि इनकी कविताओं में प्रकृति–पक्ष की उपेक्षा हुई है और इस पर अभी तक गंभीरता से विचार–विमर्श नहीं हुआ है। यही भावना लेकर मैं एक बार डॉ. ओमप्रकाश सिंह से मिला। उनसे इस विषय पर बात की। डॉ. ओमप्रकाश सिंह ने विषय को गंभीर, शोध हेतु उपयुक्त परंतु चुनौतीपूर्ण बताया। मैंने यह चुनौती स्वीकार की। यहाँ यह भी कह देना चाहता हूँ कि मेरे शोध निर्देशक डॉ. ओमप्रकाश सिंह के बिना यह शोध कार्य मुझसे कदापि इस रूप में नहीं हो सकता था। उन्होंने मुझे केवल निर्देश ही नहीं दिया, मेरी समझदारी को भी विकसित किया। उन्होंने जितनी सहायता की उसका मैं शायद पात्र नहीं हूँ। कृतज्ञता के इसी भाव से, मैंने यह लघु शोध प्रबंध 'उन्हें' ही समर्पित किया है। इसमें जो कुछ भी अच्छा है उन्हीं की देन है।

वैसे देखा जाए तो प्रकृति से अछूता शायद ही कोई कवि मिलेगा। प्राचीन काल से लेकर अब तक अनेक कवियों ने अपनी कविता में प्रकृति को स्थान दिया है। दुनिया के हर बड़े कवि की कविता में उसके समय, समाज और संस्कृति में मौजूद प्रकृति के लोकप्रिय रूप खोजे जा सकते हैं या यूँ कहें कि अनायास अभिव्यक्त होते हैं। यही कारण

है कि दक्षिण भारतीय साहित्य में समुद्र, नारियल; उत्तर भारत के साहित्य में मैदान, पर्वत, फसलें और राजस्थानी साहित्य में बादल, एक ही कविता में कई बार आ जाते हैं।

नागार्जुन का काव्य लेखन 1930 ई. से शुरू होकर 1997 ई. तक चलता है। तब से अब तक हिन्दी काव्य के क्षेत्र में अनेक आन्दोलनों का दौर आ–जा चुका है। नागार्जुन की हिन्दी कविताओं में उपस्थित प्रकृति का सही–सही रेखांकन तभी हो सकता है जब समूचे आधुनिक काल की हिन्दी कविताओं में आई प्रकृति का विधिवत् अध्ययन किया जाए। इसीलिए मैंने यह अध्ययन 'आधुनिक कविता में प्रकृति–चित्रण की परंपरा से शुरू किया है। शोध प्रबंध का पहला अध्याय है – 'आधुनिक कविता में प्रकृति चित्रण और नागार्जुन'। इस अध्याय में मैंने हिन्दी कविता के आधुनिक काल के प्रारंभ से लेकर सभी ऐतिहासिक कालखंडों – भारतेन्दु युग, द्विवेदी यगु, छायावाद के आगे नागार्जुन (प्रगतिवाद) तक की प्रकृति संबंधी कवियों–कविताओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया है। साथ ही यह भी दिखलाने की कोशिश की है कि कालखंड–विशेष की प्रकृति–चित्रण में क्या बड़ा परिवर्तन आया। हर युग के प्रकृति–चित्रण की अपनी–अपनी विशेषताएँ हैं, बल्कि कहना चाहिए एक विकास–क्रम है, जिसको मैंने चिह्नित करने की कोशिश की है।

दूसरे अध्याय, 'नागार्जुन के काव्य में प्रकृति के विविध रूप' में नागार्जुन के सभी चौदहों काव्य संग्रहों के आधार पर प्रकृति के भिन्न–भिन्न रूपों, उनके महत्व, उनके सरोकार और उनकी रचना–प्रक्रिया को समझने की कोशिश की गई है। प्रकृति के उन रूपों से जो बार–बार कविताओं में आए हैं कवि की प्रकृति–चेतना को समझने में सहायता मिली है। फिर–फिर आने वाले ये रूप कवि मन को समझने की कुंजी बने हैं। इस अध्याय के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि नागार्जुन का प्रकृति–बोध ठेठ किसान का प्रकृति बोध है। साथ ही इसमें यथार्थवादी कवि की सौन्दर्यवादी दृष्टि भी मिलेगी। यहाँ भारतीय गाँवों के यथार्थ रूप को प्रकृति–रूपों के माध्यम से काव्य में अभिव्यक्ति मिली है।

दरअसल, नागार्जुन की कविताओं में प्रकृति का एक अलग रूप है, जो उसे पूर्ववर्ती छायावादी कवियों और समकालीन कवियों दोनों से पृथक करता है। यह मेरे तीसरे अध्याय 'नागार्जुन के प्रकृति–चित्रण का वैशिष्ट्य' का विवेच्य विषय है। छायावादी कवियों के बारे में प्रथम अध्याय में चर्चा हो चुकी है, अतः यहाँ समकालीन कवियों – केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन शास्त्री, शमशेर बहादुर सिंह, मुक्तिबोध और अज्ञेय के प्रकृति–चित्रण के साथ नागार्जुन के प्रकृति–चित्रण का परस्पर साम्य–वैषम्य निरूपित किया गया है। जैसा कि ऊपर कह चुका हूँ कि – नागार्जुन का प्रकृति–चित्रण उनके समकालीन कवियों से अलग प्रकार का है। इसके दो कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि उनकी कविताओं का समकालीन कवियों से कुछ अलग तरह का रूप–विन्यास है और दूसरा कारण यह है कि उनकी प्रकृति–चित्रण संबंधी कुछ कविताओं पर संस्कृत काव्य के प्रकृति–चित्रण की प्रणाली का प्रचुर प्रभाव है। इसी अध्याय में नागार्जुन के प्रकृति–चित्रण की खासियत को भी लक्षित किया गया है। मोटे तौर पर नागार्जुन की प्रकृति–चित्रण संबंधी कविताओं को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। एक वर्ग वह जिसमें प्रकृति, प्रकृति के रूप में है और दूसरा वर्ग वह, जिसमें प्रकृति केवल प्रकृति नहीं है, उसका एक भिन्न संदर्भ भी है। प्रथम वर्ग की कविताओं में प्रकृति के ढेरों रूप हैं – गाँवों की प्रकृति, पहाड़ों की प्रकृति, ऋतुओं का सौन्दर्य आदि है। दूसरे वर्ग की कविताओं में प्रकृति मानव जीवन के विविध भावों से जुड़कर आती है। इस वर्ग की प्रकृति संबंधित कविताओं में उस युग की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक चिंताएँ और खासकर मानव का संघर्ष परिलक्षित होता है। यह अवश्य है कि नागार्जुन की चेतना को प्रकृति सर्वाधिक उत्तेजित करती है। प्रकृति के प्रति उनका आकर्षण उनकी प्रगतिशील विचारधारा से न तो विचलन है, न ही क्रांतिविरोधी पलायन, जैसाकि रामविलास शर्मा मानते हैं।

शुरू शुरू में नागार्जुन के सभी काव्य संग्रह प्राप्त करने में कुछ कठिनाई आई, लेकिन नागार्जुन के पुत्र श्री शोभाकांत जी ने इस कठिनाई को दूर कर दिया। मैं यहाँ उनके सहयोग का आभार व्यक्त करना चाहता हूँ। इस क्रम में मित्र जयप्रकाश 'सागर' और मनीष गुप्ता के विशेष सहयोग का भी मैं सदैव ऋणी रहूँगा। यहाँ कुछ और नामों का उल्लेख करना चाहता हूँ जिनका सहयोग प्रत्यक्षतः न होकर भी बड़ा मददगार रहा है। ऐसे अग्रज हैं – अतुल जी, नीलकंठ जी, विमल जी, राकेश मोहन 'चतुर' जी, धीरेन्द्र जी, नवलेन्द्र जी, महेश जी 'लखनऊवाले' चंदीप जी, दीपक रावत, सरताज अनवर, नितिन श्रीवास्तव, अमित राय, आनंद त्रिपाठी और संजय सिंह। साथ ही मैं साहित्य अकादमी और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी के सहयोगी कर्मचारियों को भी धन्यवाद देता हूँ। इनके मित्रवत व्यवहार से शोध का उत्साह सदैव बना रहा। इस शोध के दौरान मुझे सर्वाधित प्रेरणा और प्रोत्साहन पापा, अम्मा और रत्नाकर से मिला। और अंततः शिवप्रताप यादव जी को धन्यवाद न देने की गुस्ताखी कैसे कर सकता हूँ, जिन्होंने इस लघु शोध प्रबंध को वर्तमान रूप में मुद्रित किया है।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली–110067
2005

– दिनकर सिंह

अध्याय–1

आधुनिक काव्य में प्रकृति–चित्रण और नागार्जुन

हिन्दी (खड़ी बोली) में कविता की शुरुआत साहित्येतिहास के आधुनिककाल में गद्य के साथ साथ न होकर थोड़ी देर से हुई। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार आधुनिककाल की आरंभिक कविताएँ पुरानी धारा पर बनी रहीं। यह पुरानी धारा ब्रजभाषा – काव्य परंपरा की थी। काव्य–क्षेत्र की नई धारा जिसे शुक्ल जी प्रथम उत्थान कहते हैं, भारतेन्दु मंडल के लेखकों से संपन्न थी। भारतेंदु के सहयोगी लेखकों ने समयानुकूल नए नए विषयों की ओर अपनी रुचि दिखाई, पर भाषा परंपरा से चली आती हुई ब्रजभाषा ही रखी। उन लोगों ने छंद भी वही लिए जो ब्रजभाषा में प्रचलित थे। कुल मिलाकर शिष्ट साहित्य के भीतर परंपरागत काव्यभाषा का ही चलन बना रहा। भारतेन्दु ने जिस परिमाण में गद्य को नए–नए विषयों और मार्गों की ओर लगाया उस परिमाण में पद्य को नहीं। भारतेन्दु के विषय में आचार्य शुक्ल ने लिखा है –

> "वे केवल 'नरप्रकृति' के कवि थे, बाह्य प्रकृति की अनेकरूपता के साथ उनके हृदय का सामंजस्य नहीं पाया जाता। अपने नाटकों में दो एक जगह उन्होंने प्राकृतिक वर्णन रखे हैं, वे केवल परंपरापालन के रूप में है।"[1]

काव्य की इस धारा में ठाकुर जगमोहन सिंह की कविता में अभिव्यक्त प्रकृति का खास स्थान उल्लेखनीय है। उनकी कविता में आए प्राकृतिक वर्णनों पर संस्कृत काव्य का असर देखा जा सकता है। वाल्मीकि, कालिदास व भवभूति की भाँति ठाकुर जगमोहन सिंह ने प्राकृतिक दृश्यों के विधान में कई वस्तुओं की संश्लिष्ट योजना द्वारा 'बिम्बग्रहण' कराने का कुछ–कुछ प्रयास अवश्य किया है। उन्हें इसका श्रेय देते हुए आचार्य शुक्ल ने बड़ी मार्मिक टिप्पणी की है –

> "संस्कृत के प्राचीन कवियों की प्रणाली पर हिन्दी काव्य के संस्कार का जो संकेत ठाकुर साहब ने दिया, खेद है कि उसकी ओर किसी ने भी ध्यान न दिया।"[2]

कुल मिलाकर उस समय की कविता में ढाँचे व अभिव्यंजना के ढंगों के साथ साथ प्रकृति के स्वरूप निरीक्षण आदि में स्वच्छंदता नहीं दिखाई देती।

गद्य एक भाषा में और पद्य दूसरी भाषा में, यह प्रवृत्ति कब तक चलती; जबकि काफी पहले 'सधुक्कड़ी भाषा' में खड़ी बोली का व्यवहार हो चुका था। ब्रजभाषा के कवि अब खड़ी बोली में भी कविता करने लगे। कुछ अपने आप और कुछ अनुरोध पर। हिन्दी काव्य की इस नई धारा को शुक्ल जी द्वितीय उत्थान कहते हैं। इस उत्थान के अगुआ पं. श्रीधर पाठक हैं। आधुनिक काव्य में प्रकृति चित्रण की नज़र से भी इनका खास स्थान है। इनकी नज़र प्रकृति के परंपराबद्ध रूपों तक ही बँधकर नहीं रही। शुक्ल जी के शब्दों में –

> "... अपने समय के कवियों में प्रकृति का वर्णन पाठक जी ने सबसे अधिक किया, इससे हिंदी प्रेमियों में वे प्रकृति के उपासक कहे जाते थे। पर यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि उनकी यह उपासना प्रकृति के उन्हीं रूपों तक परिमित थी जो मनुष्य को सुखदायक और आनंदप्रद होते हैं, या जो भव्य और सुन्दर होते हैं। प्रकृति के सीधे सादे नित्य आँखों के सामने आने वाले देश के परंपरागत जीवन से संबंध रखनेवाले दृश्यों की मधुरता की ओर उनकी दृष्टि कम रहती ।"[3]

इस युग की कविता में मैथिलीशरण गुप्त जैसे कवि की रचनाओं के माध्यम से हिन्दी कविता का राष्ट्रीय रूप उभरता है। श्रीधर पाठक की तरह स्वच्छंदता की प्रवृत्ति रामनरेश त्रिपाठी के काव्य में और अधिक प्रसार पाई। उन्होंने प्रकृति की स्थानीय विशेषताओं पर लेखनी चलाई। मसलन, 'स्वप्न' में उत्तर–भारत और 'पथिक' में दक्षिण भारत की प्राकृतिक विशेषताओं का अच्छा अंकन हुआ है। इनका काव्य भारतेन्दु की तरह केवल 'नरप्रकृति' तक सीमित न रहकर मनुष्य के कर्म–सौन्दर्य और प्रकृति के सौन्दर्य तक

विस्तृत है। इनके यहाँ प्रकृति के स्वाभाविक रूप मानवीय भावों के साथ–साथ आते चलते हैं। यहाँ पहली बार हिन्दी कविता में प्रकृति का स्वतंत्र व्यक्तित्व झलकता है। प्रकृति यहाँ केवल भावों को उद्दीप्त करने हेतु नहीं बनी है, उसका अपना महत्त्व भी स्थिर हुआ है। प्रकृति–चित्रण की लगभग सभी प्रवृत्तियाँ कमोबेश रूप में 'स्वप्न' खंडकाव्य में झलक जाती है। इस संदर्भ में कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है –

"अर्द्धनिशा में तारागण से प्रतिबिम्बित अति निर्मल जलमय।
नीलझील के कलित कूल पर मनोव्यथा का लेकर आश्रय।।
नीरवता में अंतस्थल का मर्म करुण स्वर लहरी में भर।
प्रेम जगाया करता था वह विरही विरह गीत गा गा कर।।"[4]

x x x

"प्रतिक्षण नूतन वेष बनाकर रंग–बिरंगा निराला।
रवि के संमुख थिरक रही है नभ में वारिदमाला।।
नीचे नील समुद्र मनोहर ऊपर नील गगन है।
घन पर बैठ बीच में बिचरूँ, यही चाहता मन है।"[5]

जिन अन्य सहृदय कवियों ने प्रकृति से रिश्ता बनाकर काव्य रचना की, उनमें राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' और पं. रूपनारायण पांडेय का नाम शामिल किया जा सकता है। पूर्ण जी के प्रकृति निरीक्षण और वर्णन का पता उनकी लघुकविता 'अमल्तास' से चलता है –

"देख तब वैभव, द्रुमकुल–संत ! विचारा उसका सुखद निदान।
करे जो विषम काल को मंद, गया उस सामग्री पर ध्यान।।
रंगा निज प्रभु ऋतुपति के रंग, द्रुमों में अमल्तास तू भक्त।
इसी कारण निदाध प्रतिकूल, दहन में तेरे रहा अशक्त।।"[6]

हालाँकि यहाँ कवि का आशय भक्ति का महत्त्व दिखलाना है, फिर भी दहकती गर्मी में जब वनस्थली के सारे पेड़–पौधे झुलसे से रहते हैं और कहीं प्रफुल्लता नहीं

दिखाई देती है, उस समय भी अमलतास पीले फूलों की आभा से मन मोह लेता है। आचार्य शुक्ल के अनुसार पं. रूप नारायण पांडेय के विषय चयन में ही भावुकता टपकती है। उनकी कतिताओं के शीर्षक यथा – दलित कुसुम, वनविहंगम, आश्वासन, पराग – से ही आचार्य शुक्ल का यह कथन पूर्णतः सत्यापित हो जाता है। इस संदर्भ में एक उदाहरण पर्याप्त होगा –

"अहह ! अधम आँधी, आ गई तू कहाँ से ?
प्रलय–बन–घटा सी छा गई तू कहाँ से ?
पर–दुख–सुख तू ने, हा ! न देखा न भाला।
कुसुम अधखिला ही, हाय ! यों तोड़ डाला।।"[7]

काव्य में प्रकृति–चित्रण के संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का उल्लेख आवश्यक है। शायद नम्रतावश अपने साहित्येतिहास में उन्होंने अपनी गणना कवियों में नहीं की है। जबकि उनकी कविताओं में – जो बाद में 'मधुस्रोत' नामक काव्य संकलन में संकलित की गई – प्रकृति के सहज सौन्दर्य का चित्रण विशेष रूप से मिलता है। शुक्ल जी ने अपनी कविताओं के माध्यम से प्रकृति–चित्रण के व्यवहार–पक्ष का ही उद्‌घाटन नहीं किया है, बल्कि 'काव्य में प्राकृतिक दृश्य' निबंध के माध्यम से प्रकृति–चित्रण के सैद्धांतिक पक्ष पर भी पूरा पूरा प्रकाश डाला है।

आधुनिक काल के द्वितीय उत्थान में हिन्दी कविता प्रकृति वर्णन की ओर कुछ और अग्रसर हुई। लेकिन यह जरूर है कि यहाँ प्रकृति के प्रायः वे ही चटकीले रूप लिए गए जो सजावट के काम के समझे गए। जगत और जीवन के नाना रूपों और तथ्यों के बीच हमारे हृदय के प्रसार के लिए अब भी बहुत कुछ बचा रहा। इसे लक्ष्य रते हुए शुक्लजी ने लिखा है –

"द्वितीय उत्थानकाल का अधिकांश भाग खड़ी बोली को भिन्न –भिन्न

प्रकार के पद्यों में ढालने में ही लगा। ... तृतीय उत्थान में आकर खड़ी बोली के भीतर काव्यत्व का अच्छा स्फुरण हुआ।"[8]

द्वितीय उत्थान (द्विवेदी काल) की नूतन काव्य प्रणाली आगे चलकर नए ढंग के लाक्षणिक अप्रस्तुत विधान, गीतात्मक स्वरूप और प्रकृति–चित्रण के साथ सूक्ष्म अर्थ–प्रक्रिया में व्यंजित होती रही। साहित्य के इतिहास में इस कालखंड को छायावाद के नाम से अभिहित किया गया है। यह वह काल खंड है जहाँ से आधुनिक काल के तृतीय उत्थान का प्रारंभ माना जाता है। इस वाद के साये में प्रकृति के पाँव चहुँदिश पसरे। कविता में प्रकृति की छटा सर्वत्र व्यापने लगी। वैसे भी आधुनिक काव्य में प्रकृति–चित्रण से आशय प्रायः छायावाद की प्रकृति से हुआ करता है। इस युग के आरंभ के बारे में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का विचार है कि –

> मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय, पं. बदरीनाथ भट्ट और श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी सरीखे कवि प्रकृति के साधारण, असाधारण सब रूपों पर प्रेमदृष्टि डालकर उसके रहस्य भरे सच्चे संकेतों को परखकर भाषा को अधिक चित्रमय सजीव और मार्मिक रूप देकर कविता का एक अकृत्रिम, स्वच्छंद मार्ग निकाल रहे थे ? अतः हिंदी कविता की नई धारा का प्रवर्तक इन्हें ही समझना चाहिए। मुकुटधर जी की रचनाएँ नरेतर प्राणियों की गतिविधि का भी रागरहस्यपूर्ण परिचय देती हुई स्वाभाविक स्वच्छंदता की ओर झुकती मिलेंगी। प्रकृति प्रांगण के चर–अचर प्राणियों का रागपूर्ण परिचय उनकी गतिविधि पर आत्मीयता व्यंजक दृष्टिपात, सुखदुख में उनके साहचर्य की भावना, ये सब बातें स्वाभाविक स्वच्छंदता के पथचिह्न हैं – ।[9]

सारांश यह कि जब काव्य की भाषा खड़ी बोली मँज गई और भावों के नाना रूप

हृदय की लय में घुलमिलकर आगे बढ़ने लगे तो मानव की चिर सहचरी प्रकृति भी साथ थी।

छायावाद की सामान्य प्रवृत्तियों, विशिष्टताओं का वर्णन करते करते शुक्ल जी प्रकृति–वर्णन पर आते हैं। इसके बारे में उनकी टिप्पणी है –

"प्रकृति अपने अनंत रूपों और व्यापारों के द्वारा अनेक बातों की गूढ़ वा अगूढ़ व्यंजना करती रहती है। इस व्यंजना को न परखकर या न ग्रहण करके जो साम्यविधान होगा यह मनमाना आरोपमात्र होगा। इस अनंत विश्व महाकाव्य की व्यंजनाओं की परख के साथ जो साम्यविधान होता है वह मार्मिक और उद्‌बोधक होता है।" उक्त कथन की पुष्टि के लिए शुक्ल जी यहाँ रुककर पंत की इन पंक्तियों को उद्धृत करते हैं –

"यह शैशव का सरल हास है, सहसा उर से है आ जाता।
यह ऊषा का नव–विकास है, जो रज को है रजत बनाता।
यह लघु लहरों का विलास है, कलानाथ जिसमें खिंच आता।"[10]

इस उद्धरण के ठीक बाद ही शुक्ल जी लिखते हैं – "मनमाने आरोप, जिनका विधान प्रकृति के संकेत पर नहीं होता, हृदय के मर्मस्थल का स्पर्श नहीं करते, केवल वैचित्र्य का कुतूहल मात्र उत्पन्न करके रह जाते हैं। छायावाद की कविता पर कल्पनावाद, कलावाद, अभिव्यंजनावाद आदि का भी प्रभाव ज्ञात या अज्ञात रूप में पड़ता रहा है। इससे बहुत सा अप्रस्तुत विधान मनमाने आरोप के रूप में भी सामने आता है। प्रकृति के वस्तुव्यापारों पर मानुषी वृत्तियों के आरोप का बहुत चलन हो जाने से कहीं कहीं ये आरोप वस्तुव्यापारों की प्रकृतव्यंजना से बहुत दूर जा पड़े हैं, जैसे – चाँदनी के इस वर्णन में –

"जग के दुख दैन्य शयन पर यह रुग्णा जीवनबाला।
पीली पड़, निर्बल, कोमल, कृश देहलता कुम्हलाई।
विवसना, लाज में, लिपटी, साँसों में शून्य समाई।"[11]

आलोचक शुक्ल जी की संतुलित दृष्टि को यह भला कैसे भाता कि सौन्दर्य की भावना सर्वत्र स्त्री के चित्र से चिपकी रहे। सही भी है कि प्रकृति के अनेकानेक रूपों, क्रियाओं का अपना अलग ही सौन्दर्य है जो एक ही प्रकार के वस्तु–व्यापार के आरोप द्वारा पूर्णतः अभिव्यक्त नहीं हो सकता। प्रकृति के सच्चे स्वरूप और वास्तविक व्यंजना को ग्रहण करना मात्र ही छायावाद का उद्देश्य नहीं रहा। प्रकृति के विविध रूपों के जरिए अपनी भावनाएँ व्यक्त करना छायावाद का मुख्य लक्ष्य था। भले ही उन गृहीत रूपों में भावनाओं को व्यक्त करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति न हो। प्रमुख छायावादी कवि प्रसाद पदलालित्य, मधुरता और भिन्न–भिन्न शरीर विकारों को प्रस्तुत करने हेतु प्रकृति पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। मधुमयी प्रवृत्ति के अनुकूल उन्हें प्रकृति के चयनित रूप ही भाए, जैसे – वल्लरियाँ, लताएँ, कलियों की मंद मुस्कान, सुमनों के मधुपात्र पर मंडराते मलिंदों के गुंजार, सौरभ–समीर की थपकी, पराग–मकरंद का लुटना, ऊषा यानी कपोलों पर लज्जा की लाली, आकाश–पृथ्वी के अनुरागी संबंध, रजनी के आँसू से भीगे अम्बर, चन्द्रमुख पर शरदघन के सरकते परदे, मधुमास की मधुवर्षा और झूमती मादकता, आदि।

प्रसाद की कविताओं में प्रकृति के भव्य, आकर्षक चित्र तो मिलते ही हैं, पर इतने से ही प्रकृति–चित्रण पूर्ण नहीं हो जाता। प्रकृति का रूप केवल कोमल कांत या मधुर ही नहीं है उसका ध्वंसकारी रूप भी है। जाहिर है कि यदि प्रकृति–चित्रण का पूर्व पक्ष ही चित्रित हुआ हो तो कवि के चित्रण को पूर्ण नहीं कहा जा सकता। प्रसाद के यहाँ प्रकृति–चित्रण के दोनों रूप – मधुर एवं विध्वंसक – मिलते हैं। प्रकृति के विध्वंसक रूप का चित्रण 'कामायनी' में व्यापक परिधि में हुआ है –

"दृष्टि जब जाती हिम–गिरि ओर
प्रश्न करता मन अधिक अधीर,
धारा की यह सिकुड़न भयभीत
आह कैसी है ? क्या है पीर ?

x x x

... एक दिन सहसा सिन्धु अपार
लगा टकराने नभ तल क्षुब्ध।"[12]

छायावाद की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता प्रकृति का मानवीकरण है। यहाँ मानवीकरण केवल प्रकृति का ही नहीं हुआ है बल्कि भावों का भी हुआ है और रात्रि, संध्या एवं चाँदनी जैसी अमूर्त चीजों का भी। इस संदर्भ में एक उदाहरण प्रस्तुत है, जिसमें 'चिरदग्ध दुखी वसुधा' को लक्ष्य करके कवि कहता है –

"चिर दग्ध दुखी बसुधा आलोक माँगती, तब भी;
तुम तुहिन बरस दो कन कन, यह पगली सोये अब भी।"[13]

पंत की कविता 'चाँदनीं से चाँदनी का एक चित्र उदाहरणार्थ प्रस्तुत है –

"वह शशि किरणों से उतरी
चुपके मेरे आँगन पर,
उर की आभा में कोई
अपनी ही छवि से सुन्दर !"[14]

छायावादी कवियों के प्रकृति–चित्रण में अनेक स्थलों पर प्रकृति का रहस्यवादी स्वरूप दिखाई देता है। ये कवि केवल प्रकृति के रहस्यवादी रूप का चित्रण करके ही संतुष्ट नहीं हो जाते, बल्कि रहस्य के कारणों को या रहस्यात्मक वस्तु पर पड़े हुए आवरण को उठाकर उस पार झांकने की निरंतर कोशिश करते हुए दिखाई पड़ते हैं। आलोचकों ने छायावादी कविता में व्याप्त रहस्यवाद के 'वाद' का खुला विरोध किया था और इसे आयातित माना था। इसी क्रम में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने छायावादी रहस्यवाद को फ्रांसीसी कवियों के एक दल प्रतीकवादी (सिंबालिस्ट्स) और यूरोपीय फैंटसमाटा से जोड़कर देखा था।

छायावाद के प्रकृति वर्णन में कहीं कहीं रहस्यभावना भी उजागर होती है। शुक्ल

जी इस रहस्यात्मक प्रभाव का कारण बंगला और यूरोपीय साहित्य मानते थे। पंत की पंक्ति है –

"हुआ था जब संध्या आलोक
हँस रहे थे तुम पश्चिम ओर
विहँगरव बन कर मैं, चितचोर !
गा रहा था गुण : किन्तु कठोर
रहे तुम नहीं वहाँ भी, शोक।"[15]

पंत के 'गुंजन' में रहस्यभावना के स्वाभाविक रूप आए हैं। दूर तक फैले खेतों, मैदानों के छोर पर दूर वृक्षों की जो ऊपरी धुंधली हरी रेखा दिखती ही रहती है, उसके उधर किसी मधुर लोक की कल्पना है –

"दूर उन खेतों के उस पार, जहाँ तक गई नील झंकार।
छिपा छायाबन में सुकुमार स्वर्ग, की परियों का संसार।"[16]

पंत के प्रकृति वर्णन प्रकृति में सुन्दर रूपों की आह्लादकारी अनुभूति है। उनकी अप्रस्तुत योजना प्रस्तुत रूपों की सौन्दर्यानुभूति के प्रसार की मिसाल है। ऐसा ही प्रकृति–व्यापार के द्वारा मानसिक व्यापार का साम्याधारित दृष्टांत प्रस्तुत है –

"तड़ित सा सुमुखि ! तुम्हारा ध्यान प्रभा के पलक मार उर चीर।"[17]

पंत के प्रकृति वर्णन के संदर्भ में आचार्य शुक्ल ने लिखा है –

"छायावाद के भीतर माने जाने वाले सब कवियों में प्रकृति के साथ सीधा प्रेमसंबंध पंतजी का ही दिखाई पड़ता है। प्रकृति के अत्यंत रमणीय खंड के बीच उनके हृदय ने रूपरंग पकड़ा है। 'पल्लव', 'उच्छ्वास' और 'आँसू' में हम उस मनोरम खंड की प्रेमार्द्र स्मृति पाते हैं। यह अवश्य है कि सुषमा

की ही उमंगभरी भावना के भीतर हम उन्हें रमते देखते हैं। 'बादल' को अनेक नेत्राभिराम रूपों में उन्होंने कल्पना की रंगभूमि पर ले आकर देखा है, जैसे –

फिर परियों के बच्चे से हम सुभग सीप के पंख पसार।
समुद तैरते शुचि ज्योत्स्ना में पकड़ इंदु के कर सुकुमार।।

पर प्रकृति के बीच उसके गूढ़ और व्यापक सौहार्द्र तक – ग्रीष्म की ज्वाला से संतप्त चराचर पर उसकी छाया के मधुर, स्निग्ध, शीतल, प्रभाव तक; उसके दर्शन से तृप्त कृषकों के आशापूर्ण उल्लास तक – कवि ने दृष्टि नहीं बढ़ाई है।"[18] पंत ने बादल को उस व्यापक प्रकृति–भूमि पर नहीं देखा जिस पर कालिदास ने देखा था। निस्संदेह साम्य का आरोप कोई घटियापन नहीं है, फिर भी प्रकृति के किसी अंग का नानावस्तुओं से गूढ़ अगूढ़ संबंध का चित्रण करने वाली कल्पना अधिक मार्मिक और पूर्ण हुआ करती है। पंत ने अव्यक्त प्रकृति के बीच चैतन्य के सानिध्य से, शब्द ब्रह्म के संचार या स्पंदन से, सृष्टि के अनेक रूपात्मक विकास का कैसा सजीव चित्रण किया है –

"मुक्त पंखों में उड़ दिन रात सहज स्पंदित कर जग के प्राण;
शून्य नभ में भर दी अज्ञात, मधुर जीवन की मादक तान।
छोड़ निर्जन का निभृत निवास, नीड़ में बँध जग के सानंद;
भर दिए कलरव से दिशि आश गृहों में कुसुमित, दित अमंद।
रिक्त होते जब जब तरुवास, रस धर तू नव नव तत्काल।
नित्य नापित रखता सोल्लास, विश्व के अक्षयवट की डाल।"[19]

पंत की कविताओं में प्रकृति के प्रत्यक्षरूपों को भी स्थान मिला है, इसकी पुष्टि 'नौका विहार' कविता से की जा सकती है। इस क्रम में कवि प्रकृति के भयानक रूप को भी नहीं भूला है –

बहिन बाढ़, उल्का, झंझा की भीषण भू पर
कैसे रह सकता है कोमल मनुज कलेवर।[20]

बात यह है कि जीवन और जगत के चारों ओर पड़नेवाली प्रकृति की साधारण और छोटी से छोटी वस्तुओं को भी छायावादी कवियों ने अपनेपन के साथ देखा है। पंत ने आत्मप्रसार का एक सुन्दर बिम्ब 'दो मित्र' नामक कविता में उपस्थित किया है –

"उस निर्जन टीले पर
दोनों चिलबिल
एक दूसरे से मिले
मित्रों से हैं खड़े,
मौन, मनोहर
दोनों पादप
सह वर्षातप
हुए साथ हो बड़े
दीर्घ सुदृढ़तर।

अपने हृदय के भावों को झलकाने, वेदनादि की गंभीरता दिखलाने के साथ–साथ मानव मन के आवेगों के रूपरंग में प्रकृति को ढालना महादेवी वर्मा की मूल विशेषता है। उक्त अध्ययन के आलोक क्रम में निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि छायावाद में प्रकृति का स्वप्निल रूप अधिक मिलता है। प्रकृति बाह्य जगत से कहीं अधिक कवि मन के अंदर अवस्थित जान पड़ती है।

छायावाद के बाद का काल प्रगतिवाद के नाम से जाना जाता है। छायावाद के अंत की घोषणा पंत ने 'युगांत' में ही कर दी थी। वैसे किसी प्रवृत्ति को काल सीमा में बाँध पाना असंभव है। अवशेष रूप में प्रवृत्तिगत कुछ विशेषताएं चलती ही रहती हैं। यह जरूर है कि छायावाद के अंत में लगभग हर कवि अभिव्यक्ति के नए मार्ग की तलाश करने लगा

था। उसे यह लगने लगा था कि उसकी अभिव्यक्ति परिपूर्ण ढंग से नहीं हो पा रही है। इस अभिव्यक्ति के लिए उसे नए कथ्य के साथ–साथ नयी भाषा और नए काव्यरूपों की तलाश थी। इस क्रम में उसने जीवन–जगत को अलग ढंग से देखना प्रारंभ किया। ऐसी स्थिति में प्रकृति–चित्रण के स्वरूप में बदलाव आ जाना नितांत स्वाभाविक था। इस काल की कविता में प्रकृति का सहज, स्वाभाविक और निखरा हुआ रूप दिखाई पड़ता है। ऐसे कवियों में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन एवं शिवमंगल सिंह सुमन प्रमुख हैं। प्रगतिवादी कवियों ने प्रकृति और ग्रामीण जीवन का उत्कृष्ट चित्रण किया है। खासतौर पर नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल ने।

नागार्जुन में निरीक्षण की अद्‌भुत क्षमता है। वे प्रकृति के दृश्यों से अपनी कविता को जीवंत बनाते हैं। वे गाँव–शहर के बीच और आसपास फैले हुए जाने–पहचाने प्राकृतिक–सौन्दर्य और उसके माध्यम से सामाजिक जीवन के रूप और रंग को चित्रित करने वाले कवि हैं, किसी काल्पनिक वन्य छवि की तलाश में भटकने वाले नहीं।

नागार्जुन बिना किसी संकोच के आतुर बादलों का झुकना देखकर मंत्रमुग्ध होते हैं। उनकी कविता में कई बार प्रकृति के साथ मनुष्य भी आता है। उमंग, उल्लास और आंदोलन में बाधाएँ पड़ने पर व्यक्ति क्षुब्ध होता है, उसे किसी ऊर्जावान–अर्थवान स्रोत की जरूरत महसूस होती है। विषम परिस्थितियों से लड़ने के लिए आशावाद जरूरी है। जनता का आह्‌वान करना, उसे आंदोलित करना, ये स्वर नागार्जुन की प्रकृति–संबंधी कविताओं में भी हैं। कवि जीवन में आशावादी नज़रिए से कोयल के गान की तलाश करता है और टेसू, अलसी के फूलों के बारे में सोचता है –

"टूसो के उमगे कई दिन हो गए"

कवि का फूल उगने का इंतजार करना उसके आशावादी नजरिए का परिचायक

है। उसे दृढ़ विश्वास है कि अभी तक टूसें नहीं निकले हैं तो क्या हुआ, आगे निकलेंगे।

नागार्जुन की प्रकृति संबंधी कविताओं में कहीं ग्रामीण जीवन की प्रकृति आती है, तो कहीं पहाड़ी जीवन की सुन्दर और लुभावनी प्रकृति, तो कहीं प्रकृति के असहज रूप। पर प्रकृति की सभी कविताओं में नागार्जुन की अपनी छाप अवश्य मिलेगी। उन्होंने जो कुछ भी लिखा है उसमें उनका अपना ढंग, उनकी अपनी सोच, उनकी चिंता, उनकी रुचि सभी चीजें घुलमिल–सी गयी हैं। उनका प्रकृति–चित्रण लोक से संपृक्त है। इसका एक अच्छा उदाहरण उनकी 'सुबह–सुबह' कविता है –

"... रात्रि शेष की भीगी दूबों पर
नंगे पाँव चहलकदमी की
... हाथ–पैर ठिठुरे, सुन्न हुए
माघ की कड़ी सर्दी के मारे
... अधसूखी पतइयों का कौड़ा तापा
आम के कच्चे पत्तों का
जलता, कड़ुवा कसैला सौरभ लिया
... गंवई अलाव के निकट
घेरे में बैठने बतियाने का सुख लूटा।"[21]

नागार्जुन की एक कविता है 'फिसल रही चाँदनी'। इसका प्रत्येक चित्र जो दृश्य उपस्थित करता है वह चाँदनी को जीवन प्रदान करता है, गतिशील बना देता है। अब तक चाँदनी का ऐसा जीवंत रूप मुझे नहीं मिला है। 'नाच रही, कूद रही, उछल रही चाँदनी – चाँदनी का ऐसा ढीठ, उद्धत, चंचल रूप नागार्जुन को ही दिखा क्योंकि प्रकृति के साथ उनका संबंध अकुण्ठ रागात्मक है। पूरी कविता ही उद्धृत कर रहा हूँ –

"पीपल के पत्तों पर फिसल रही चाँदनी
नालियों के भीगे हुए पेट पर, पास ही

जम रही, घुल रही, पिघल रही चाँदनी
पिछवाड़े बोतल के टुकड़ों पर –
चमक रही, दमक रही, मचल रही चाँदनी
दूर उधर, बुर्जी पर उछल रही चाँदनी

आँगन में, दूबों पर गिर पड़ी –
अब मगर किस कदर सँभल रही चाँदनी
पिछवाड़े, बोतल के टुकड़ों पर
नाच रही, कूद रही, उछल रही चाँदनी
वो देखो, सामने
पीपल के पत्तों पर फिसल रही चाँदनी।[22]

नागार्जुन ने प्रकृति का विविध दृष्टियों से जीवंत चित्रण किया है। उसके अन्तर्गत सौन्दर्य, वैभव, उत्साह, अल्हड़ता, तटस्थता जैसे भावों का समावेश है। 'मेरी भी आभा है इसमें' नामक कविता प्रकृति से जुड़ी रागात्मक अनुभूति को सशक्त व्यंजना के साथ प्रस्तुत करती है। नागार्जुन मात्र जन–मन में आक्रोश जगा कर लोगों को गुमसुम नहीं करते अपितु आत्मीय स्पर्श से उनकी भावधारा को आगत भविष्य से जोड़ देते हैं –

"अब फुहारों वाली वारिश होगी,
बड़ी–बड़ी बूँदें तो यह
शायद कल बरसेंगे
शायद हफ्ता बाद।[23]

नागार्जुन का यथार्थबोध समकालीन जीवनानुभव से पूरी तरह समृद्ध है। समय के सारे अन्तर्विरोधों के बावजूद यह धरती अत्यंत उर्वरा है। इतिहास की गवाह यह माटी बहुत कुछ देख चुकी है। नागार्जुन की काव्य संवेदना माटी की इस शक्ति को समझती है। नागार्जुन जानते हैं कि जन–जन में माटी के प्रति प्रेम व्याप्त है। 'भोजपुर' नामक

कविता में नागार्जुन माटी से जनता के रिश्ते की याद दिलाकर उनमें शक्ति का संचार करना चाहते हैं –

"एक–एक सिर सूँघ चुका हूँ
एक–एक दिल छूकर देखा
इन सबमें तो वही आग है, ऊर्जा वो ही ...
चमत्कार है इस माटी में
इस माटी का तिलक लगाओ।"[24]

'पावस तुम्हें प्रणाम' नामक कविता प्रकृति से सहज लगाव की कविता है। नागार्जुन का कविमन प्रकृति में निहित राग और माधुर्य के भाव का साक्षात्कार करता है –

लोचन अंजन
पावस तुम्हें प्रणाम !
ताप तप्त बसुधा दुख भंजन
पावस तुम्हें प्रणाम।

नागार्जुन प्रकृति की सुन्दरता का सरस व प्रवाहपूर्ण चित्र बखूबी खींचते हैं। उनकी संतप्त रचना यात्रा के बीच ऐसे सरस प्रसंग वास्तव में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध की ताजगी देने वाले होते हैं –

रंगबिरंगी खिली – अधखिली
किसिम–किसिम की गंधों स्वादों वाली ये मंजरियाँ,
तरुण आम की डाल–डाल, टहनी–टहनी पर झूम रही हैं
चूम रही हैं

अभावग्रस्त जीवन किस प्रकार उदासीन व संवेदना मुक्त हो जाता है, प्रेमचंद की रचनाओं में यह सच दर्ज है। नागार्जुन नए सिरे से उस मार्मिक आख्यान को आगे बढ़ाते हैं। 'अकाल और उसके बाद' नामक कविता में आए प्राकृतिक दृश्य यथार्थ को और तीव्र

सघनता के साथ लाते हैं। यहाँ अर्थग्रहण ही नहीं बिम्बग्रहण का मार्ग भी निर्बाध है।

जनता के प्रति अपनी प्रतिबद्धता का उल्लेख नागार्जुन बार–बार करते हैं। उनकी कविताएँ भी जनता के लिए ही लिखी गई हैं। पंत की प्रकृति संबंधी कविताओं से नागार्जुन की प्रकृति संबंधी कविताओं की तुलना करने पर यह स्पष्ट होता है कि पंत की पसंद प्रायः अभिजात्य का सौन्दर्य है। उनका ध्यान प्रकृति के कोमल रूपों पर अधिक ठहरा है। उनकी कविता में बादल, नक्षत्र, चन्द्रमा, पर्वतशिखर आदि के सौन्दर्य का मनोनुकूल अंकन है। गोपाल सिंह 'नेपाली' ने पंत जैसा तो नहीं लेकिन कमोबेश पहाड़ी भूमि की रमणीयता को शब्द चित्रों में बाँधने की कोशिश दोनों ने की है। जबकि नागार्जुन की काव्यानुभूति समतल मैदान, धान–खेत, पोखर, देहात, जनपदीय मौसम, ऋतुचक्र, पेड़–पौधे, फूल–फल और गरीब आमजन के श्रम, भावना और रूप–कुरूप से निर्मित हुई है। चाँदनी को कवि चितकबरी कहता है जबकि कवि परंपरा इसे स्वच्छ, धवल, उज्ज्वल, शीतल, शुभ्र आदि बताती आई है। गाँव की धूल भरी धरती पर बीता बचपन पकी फसलों में मुस्कान नहीं तो और क्या देखेगा। आचार्य शुक्ल ऐसे प्रेम को ही देशप्रेम कहते हैं। शुक्ल जी ने लिखा है – "देशप्रेम है क्या ? प्रेम ही तो है। इस प्रेम का आलंबन क्या है ? सारा देश अर्थात् मनुष्य, पशु, पक्षी, नदी, नाले, वन, पर्वत सहित सारी भूमि। प्रेम किस प्रकार है। यह साहचर्यगत प्रेम है।"[25]

आचार्य शुक्ल के अनुसार जिनकी दृष्टि केवल सुन्दर दृश्यों पर टिकती है वे प्रकृति प्रेमी नहीं, तमाशबीन हैं। सच्ची सहृदयता की पहचान सुन्दर–असुन्दर, कोमल–कठोर सबको अपनी संवेदना के वृत्त में समेटने में है। इन अर्थों में नागार्जुन प्रकृति के सच्चे प्रेमी ठहरते हैं। उनकी व्यापक संवेदना में रूप–कुरूप, पशु–पक्षी, पेड़–पौधे, माटी, पानी सभी के लिए जगह है। उन्हें परमात्मा की किसी भी कृति – सुघड़ या फूहड़ से घिन्न नहीं पैदा

होती। वस्तुतः सामाजिक राजनीतिक चेतना व्यक्त करते समय नागार्जुन का ध्यान पूरी तरह यथार्थ के अंकन पर केन्द्रित है, जबकि प्रकृति–चित्रण करते समय वे कल्पना, स्वच्छन्दता, मिथक, काव्यरूढ़ियाँ आदि सबका प्रयोग करते हैं। प्रकृति के आनंदप्रद रूपों के साथ साथ नागार्जुन की दृष्टि, नित्य आँखों के सामने आने वाले देश के परंपरागत जीवन से संबंध रखनेवाले प्रकृति–रूपों की ओर भी है। प्रकृति–चित्रण की यह नवीनता नागार्जुन की वैचारिक प्रतिबद्धता के आलोक में और भली–भाँति समझी जा सकती है।

.....

संदर्भ सूची

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास' पृ. 320
2. वही, पृ. 322
3. वही, पृ. 329
4. वही, पृ. 342
5. वही, पृ. 343
6. वही, पृ. 338–339
7. वही, पृ. 344
8. वही, पृ. 349
9. देखें, वही, पृ. 352–356
10. वही, पृ. 364
11. वही, पृ. 365
12. वाचस्पति पाठक, प्रसाद निराला, पंत, महादेवी की श्रेष्ठ रचनाएँ, पृ. 82
13. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास' पृ. 368
14. वाचस्पति पाठक, प्रसाद निराला, पंत, महादेवी की श्रेष्ठ रचनाएँ, पृ. 156
15. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 375
16. वही, पृ. 381
17. वही, पृ. 376
18. वही, पृ. 378
19. वही, पृ. 381–382
20. वही, पृ. 385
21. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. 79
22. वही, पृ. 82
23. नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. 28
24. नागार्जुन, ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या ! पृ. 21
25. (सं.) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, चिंतामणि, द्वितीय भाग, पृ. 30

.....

अध्याय–2

नागार्जुन के काव्य में प्रकृति के विविध रूप

(क) प्रकृति का सीधा–सादा रूप

(ख) प्रकृति का दृश्यात्मक वर्णन

(ग) परंपरा और नए प्रयोग

(घ) प्रकृति और मानव जीवन के विविध रूप

नागार्जुन अभिधा के कवि हैं। उनके शब्दों में वही शक्ति है जो उन शब्दों से संबंधित वस्तु में है। नागार्जुन की कविताओं में प्रकृति का सहज–सुलभ रूप मिलता है तो दुर्लभ और असहज रूप भी। उनकी प्रकृति संबंधी कविताओं के कई आयाम हैं, कई रूप हैं। ये कविताएँ सहज हैं, पर इनकी ग्राह्यता और मार्मिकता अन्योन्याश्रित है। नागार्जुन प्रकृति संबंधी कविताओं में प्रयोगधर्मी भी है। प्रयोगधर्मी, इस अर्थ में कि जिन परिस्थितियों और शब्द प्रयोगों को उनकी अति साधारणता के कारण अकाव्यात्मक समझा गया है, उन्हीं से नागार्जुन अपनी रचनाओं को असाधारण धार देते हैं –

TH-12453

"हटी गंगा
किन्तु, गीले पाँक की दुनिया गई है छोड़
और उस पर
मल्लाहों के छोकरों की क्रमांकित पद–पंक्ति
खूब सुन्दर लग रही है ...
मन यही करता कि मैं भी
उन्हीं में से एक होता
और –
नंगे पैर, नंगा सिर
समूचा बदन नंगा
विचरता पंकिल पुलिन पर
नहीं मछली ना सही,
दस–पाँच या दो–चार क्या कुछ घुँघचियाँ भी नहीं मिलती ?"[1]

Jawaharlal Nehru University Library

हमें जो दिखाई पड़ रहा है और जैसा दिखाई पड़ रहा है, उसे वे अपनी भाषा के मुहावरे में बोलते हैं। इसीलिए नागार्जुन की कविताओं में वक्तृता का अवरोध नहीं, वार्तालाप की गति मिलती है।

(क) प्रकृति का सीधा–सादा वर्णन

नागार्जुन की प्रकृति संबंधित कविताओं में ढेरों कविताएँ प्रकृति के सीधे–सादे रूप पर है। इन सहज रूपों पर लिखी गई कविताओं में प्रकृति से कवि के गहरे परिचय का पता चलता है। ऐसी कविताओं में प्रकृति, प्रकृति के रूप में है। बादल, कुहरा आदि पर ढेरों कविताएँ इसी कोटि में रखी जा सकती हैं। ये कविताएँ प्रकृति से कवि के राग और आह्लाद की सीधे–सीधे अभिव्यक्ति हैं। प्रकृति जैसी है, जिस रूप में है, उसी रूप में कवि को आकर्षित करती है। वह प्रकृति पर किसी आडंबर, रहस्य, वस्तु या रूप का आरोपण नहीं करता। ऐसी ही वास्तविक अभिव्यक्ति का एक उदाहरण लें –

"उमड़ घुमड़ कर
नभ में छाए
बादल जहरीखाल के
हमको तो ये बेहद भाए
बादल जहरीखाल के
क्यों करते हैं इतने नखरे
बादल जहरीखाल के !
क्यों लगते हैं बिखरे–बिखरे
बादल जहरीखाल के !
सचमुच हमें निहाल करेंगे
बादल जहरीखाल के
हरे भरे होंगे ग्रामांचल
अब पौड़ी गढ़वाल के
उमड़ घुमड़कर
नभ में छाए
बादल जहरीखाल के !"[2]

प्रकृति के सहज रूपों पर आधारित इन कविताओं में कवि ने अपने सूक्ष्म निरीक्षण और अनुभव को स्वर दिया है। प्रकृति के ये सहज रूप आमरूप से सब कहीं होते हैं पर इनमें बसे सौन्दर्य को पकड़ना नागार्जुन जैसे संवेदनशील रचनाकार के ही बूते की बात है। नागार्जुन जानते हैं कि सर्दी की रात में जमीन के नीचे की सतह गर्म होती है। जमीन के एक–एक गुण धर्म की परख रखने वाले कवि की सर्दी की रात पर कविता है –

"शिशिर की निशाऽऽऽ
धुंध में डूब गयी
दिशा दिशा दिशाऽऽऽ

भुरभुरी जमीन
गरम हैं सियारों के माँद
खण्डहर के कोने में
घुग्घु गया फाँद

नखत हुए उदास
खाँसता है चाँद
गगन के बीचोंबीच
हाँफता है चाँद
शिशिर की निशाऽऽ।"[3]

सियारों की माँद को गर्म कहना और चाँद को रात में हाँफता हुआ देखना इस बात का स्वतःसूचक है कि यह कोई साधारण या आम रात नहीं है बल्कि सर्दी की लंबी रात है। यहाँ कवि बड़े ही सीधे शब्दों में प्रकृति के छुपे तत्वों को उभारता है।

ऊँचे पहाड़ी क्षेत्रों में दूर–दूर तक फैले देवदार को देखकर कवि के मन में खयाल आता है कि यह विशाल देवदार भी अजीब हैं। जाड़ा हो या गर्मी सभी मौसम में एक

समान रहता है –

"तुम न होते भीत
तुम न होते पीत
कड़ी सर्दी घाम
तुम सदैव ललाम
... सरल सीधी डाल
सतत उन्नत भाल
शिखा नभ की ओर
सहज स्नेह विभोर
खड़े तीनों काल
देवदारु विशाल
... चिर कुमार किशोर
जगत के चितचोर
हिमालय के लाल
देवदारू विशाल।"[4]

देवदार की इस अडिगता पर, उसके परिस्थिति के विरुद्ध संघर्ष को कवि ने रेखांकित किया है। यह प्रकृति का सहज रूप तो अवश्य है पर इस सहज रूप में भी मानवीय जिजीविषा का भाव कहीं छुपा हुआ है जिसको कवि ने आलोकित करने का प्रयास किया है।

कवि का एक नाम 'यात्री' और 'घुमक्कड़' भी है जो उसके व्यापक भ्रमण की प्रवृत्ति का परिचायक है। विविध क्षेत्रीय स्थितियों, स्थानिक, देशीय–भौगोलिक विशेषताओं से कवि के गहरे संबंध का पता देती ये पंक्तियाँ –

"नील नदी का तट – अंचल हो या दमिश्क के खुश्क इलाके
रतनगर्भ भारत हो चाहे पाकभूमि हो स्वर्ण प्रसविनी
काश्मीर का नन्दन वन हो

या कि सुभग नेपाल देश हो
हरी–भरी बर्मी धरती हो
धानों से लहराता श्यामल थाइलैण्ड हो
टिन की खान, रबर का जंगल –
उर्वर भूमि मलाया चाहे स्वर्ण द्वीप या यवद्वीव हो
फारमोसा हो या जापान हो
विअतनाम हो या कि कोरिया
यह समग्र एशिया इन्हीं का चरागाह है।"[5]

इस कविता में सीधे–सीधे तो कोई प्रकृति–चित्रण नहीं है। पर सभी स्थलों के साथ सिर्फ एक विशेषण जोड़कर कवि ने इन स्थलों की मूलभूत प्राकृतिक विशेषता उजागर की है। यथा, दमिश्क के खुश्क इलाके, रत्नगर्भ भारत, काश्मीर का नंदन वन, हरा–भरा बर्मा, धानों से लहराता थाईलैण्ड आदि।

नागार्जुन ने ऋतुओं पर कई कविताएँ लिखी हैं। इसक साथ ही मौसम के विविध रूप, उनके बदलते मिजाज को भी कवि ने कविता का विषय बनाया है। एक सीधी सहज कविता है – 'कुहरा क्या छाया'। लेकिन इसमें केवल कुहरे का वर्णन नहीं है एक अनुभव किया हुआ संपूर्ण चित्र है। शुक्ल जी ऐसे काव्यस्थलों के कायल थे जहाँ प्रकृति के सहज रूप का चित्रण आलंबन–रूप में होता हो। इसकी कुछ पंक्तियाँ –

"कुहरा क्या छाया
बढ़ गयी शिशिर की बीस गुनी माया
कुहरा क्या छाया
डूबी थी रात, दिल भी डूबा है
ठिठुरन की हद है, गजब है अजूबा है
दिगन्त की साँसों में संशय समाया
कुहरा क्या छाया।"[6]

प्रकृति की एक घटना 'कुहरा' को कवि मानव मन से जोड़ता है – यही कविताई है। हृदय के किसी भाव का संसार या प्रकृति के किसी रूप से बार–बार सामंजस्य होने पर वह उस भाव का आलंबन बन जाता है। इसी से उसकी अभिव्यक्ति में रसात्मकता आती है और कविता संभव हो पाती है। प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'पूस की रात' पढ़ते समय कहानी में चित्रित परिस्थिति से पाठक का ऐसा हृदय साम्य होता है कि जैसे सचमुच ठंड लग रही हो – हाड़ कँपा देने वाली पूस की रात। कुछ वैसी ही सफलता नागार्जुन ने पाई है जब वे कहते हैं कि – (कुहरे में) 'डूबी थी रात, दिल भी डूबा हैं – मानों अब कोई जोर नहीं चलेगा, जब शशि रवि तक दुबक गए तो हमारी क्या बिसात ?

इसी क्रम में नागार्जुन ने प्रकृति के सुन्दर लुभावने और आकर्षक रूपों पर भी कई कविताएँ लिखी हैं। ध्यातव्य है कि वे चिनार की दीर्घजीविता पर अक्सर सोचते हैं। शायद उन्हें निरर्थक दीर्घजीविता प्रिय नहीं है तभी वो विरोध स्वरूप एक बच्चे चिनार के जरिए बुजुर्गों की दीर्घजीविता के दंभ को ललकारते हैं –

"बच्चा चिनार
उदास है ...
उसने इन्कार कर दिया
बढ़ने से
अपने बुजुर्गों का चिर जीवन
बच्चा चिनार पसंद नहीं करता ...

... गंभीर होकर कहा बच्चा चिनार ने –
'अच्छा हुआ अल्पजीवी मैदानी बुजुर्ग इधर नहीं आए ?
वर्ना हमारे चिरजीवी बुजुर्गों का गुमान
दस गुना बढ़ जाता !"[7]

यहाँ यह बात देखने लायक है कि प्रकृति के सीधे–सादे चित्रण में भी वे अपने जीवनानुभव को घोल देते हैं। उनका जीवनानुभव प्रकृति के साथ ऐसा घुलता है कि उसे अलग–अलग देख पाना लगभग नामुमकिन हो जाता है। एक समर्थ कवि ही ऐसी रचना कर सकता है।

नागार्जुन की एक अन्य कविता है – 'भर रहा है चमक '। इसमें नागार्जुन सूरज की चमक को निचली घाटियों को निहाल करने वाला, धान के सीढ़ीनुमा खेतों के नवांकुरों को चमकाने वाला, कच्ची नासपातियों के अन्दर जीवन–रस भरने वाला और भुट्टों के दूधिया दानों को दमदार बनाने वाला प्रकाश का देवता कहते हैं। एक दूसरी कविता – 'सोनिया समन्दर' में कवि गेहूँ की पकी तैयार फसल को सोनिया समन्दर कहता है –

"बिछा है मैदान में
सोना ही सोना
सोना ही सोना
सोना ही सोना
गेहँ की पकी फसलें तैयार हैं –
बुला रही हैं
खेतिहरों को।"[8]

प्रो. मैनेजर पाण्डेय के अनुसार – "एक भारतीय मनुष्य, भारतीय प्रकृति और भारतीय समाज दोनों के संश्लिष्ट अनुभव का समग्र रूप है – और इसीलिए उसकी जिन्दगी में प्रकृति भी उसी तरह अनिवार्य हिस्से के रूप में मौजूद है, जैसे जीवन के दूसरे पक्ष। किसान के जीवन में प्रकृति देखने और अलग से आनंद लेने की कोई बाहरी वस्तु नहीं होती। अब अनुभव पर आधारित होने के कारण इन कविताओं में वह ताजगी है, जो प्रेम और प्रकृति पर केवल बौद्धिक दृष्टि से लिखी कविताओं में नहीं होती।"[9]

नागार्जुन अपनी एक कविता – 'इत्ती निर्लिप्तता नहीं चाहिए' में खीर–भवानी के दर्शनीय स्थल के चारों ओर फैले वयोवृद्ध चिनारों की समयातीत निर्लिप्तता पर मोहित हो उठते हैं। इस कदर मंत्रमुग्ध हो जाते हैं कि –

"दर–असल मैं देर–तक उन्हीं में खोया रह जाता
अगर हिमिया परांठा तोड़तोड़ कर
मेरे मुँह के हवाले न करती गई होती।"[10]

नागार्जुन इन वृद्धातिवृद्ध चिनारों को देखते–देखते इतना खो जाते हैं मानो, एक–एक पत्ता गिन रहे हों या जैसे कोई अपने पूर्वजों से मिलने का अवसर पा गया हो। इस अवसर पर कवि की तल्लीनता देख शुक्ल जी की याद आती है –

"... वन, पर्वत, नदी, निर्झर आदि प्राकृतिक दृश्य हमारे राग या रतिभाव के स्वतंत्र आलंबन हैं, उनमें सहृदयों के लिए सहज आकर्षण वर्तमान हैं। इन दृश्यों के अंतर्गत जो वस्तुएँ और व्यापार होंगे उनमें जीवन के मूल स्वरूप और मूल परिस्थिति का आभास पाकर हमारी वृत्तियाँ तल्लीन होती हैं। जो व्यापार केवल मनुष्य की अधिक समुन्नत बुद्धि के परिणाम होंगे, जो उसके आदिम जीवन में बहुत इधर के होंगे, उनमें प्राकृतिक या पुरातन व्यापारों को भी तल्लीन करने की शक्ति न होगी।"[11]

नागार्जुन के प्रकृति–वर्णन के संदर्भ में एक बात उल्लेख्य है कि कई प्रकृति–संबंधी कविताओं में वे प्रकृति रूपों से अभिभूत होकर प्रकृति का एक पूर्ण चित्र खींचते हैं जो उल्लास का संचार करता है।

उन्होंने पहाड़ी नदी का ऐसा ही चित्र खींचा है –

"नीचे,

बहुत नीचे,
बहोत नीीीी चे``` ...
सतपुली–सी गइराई में
अच्छी–खासी पहाड़ी नदी
प्रवाहित है जाने कब से ...
बीसियो पतले स्रोत
मिलकर धारा बनते हैं न !
चक्करदार पहाड़ी सड़कों से देखने पर
ये नदियाँ चाँदी की हँसुली–सी लगती हैं !"[12]

पहाड़ी नदी को 'चाँदी की हँसुली' कहने से जिस साम्य विधान का बोध होता है, वह बिम्ब ग्रहण का कारण हो रहा है। ऐसी कविताओं में कवि की भाषिक संवेदनशीलता उभर कर आई है। भाषा के अनेक सशक्त रूप सामने आते चलते हैं।

नागार्जुन की प्रकृति संबंधी कविताआं में ऋतु संबंधी कई कविताएँ हैं। इस क्रम की एक अच्छी कविता है – 'ऋतु सन्धि' –

"सामने सरपट पड़ा मैदान
है न हरियाली किसी भी ओर
तृण–लता–तरुहीन
नग्न प्रांतर देख
उठ रहा सिर में बड़ा ही दर्द
हरा धुँधला या कि नीला –
आ रहा चश्मा न कोई काम
किन्तु मुझको हो रहा विश्वास
यहाँ भी बादल बरसने जा रहा है आज
अब न सिर में उठेगा दर्द
लग रहा था आज प्रातःकाल पानी सर्द

गंगा नहाते वक्त
आया ख्याल
हिमालय में गल रही है बर्फ
आज होगा ग्रीष्म ऋतु का अंत।"[13]

कवि ऋतु परिवर्तन के समय की घटनाएँ बयान कर रहा है। उसकी नज़र घट रहे हर छोटे छोटे परिवर्तन पर है। इस कविता में कवि की अनुभूति सामान्य जन की अनुभूति के मेल में दिखती है। बरसात के मोसम की शुरूआत की संभावना से नागार्जुन प्रफुल्लित हैं। इनके पूरे काव्य–संसार में एक भी कविता ऐसी नहीं मिलती है जिसमें वो बरसात के जाने का, खत्म होने का इंतजार कर रहे हों। तात्पर्य यह है कि प्रकृति के जो रूप नागार्जुन ने चुने हैं सुन्दरता उनका एक पक्ष है, दूसरा पक्ष उनकी उपयोगिता है।

नागार्जुन की प्रकृति संबंधी कई कविताएँ ऐसी हैं जिसमें वे आत्मविस्मृत दिखते हैं। उनकी अपनी सत्ता और प्रकृति की सत्ता एकमेक हो जाती है। अर्थात् प्रकृति के बीच कवि खो जाता है। तमन्यता की पराकाष्ठा का उदाहरण यहाँ देखिए –

"पहल शुक्र का कर्णफूल जब
पीछे की नीरव घड़ियों में
रजनी को निखरा पाता हूँ
नील गगन के नक्षत्रों को
जब अविरल बिखरा पाता हूँ
तब मैं तुम्हें भूल जाता हूँ

जब ऋतुओं के संधिकाल में
विकृति वायु से आहत होकर
आकुल क्षुब्ध और उद्वेलित
सागर की उत्ताल तरंगें

वसुधा की मेखला चूमतीं
चतुर नाविकों की नौकाएँ
जब उन पर निःशंक झूमतीं
तब उनका साहसमय जीवन
देख–देख मैं ललचाता हूँ
फिर तो तुम्हें भूल जाता हूँ।"[14]

कवि अपने प्रियतम को भी उस क्षण भूल जाता है जब वह प्रकृति के रूप पर मोहित और मुग्ध होता है। उसे दुविधा नहीं है कि किसे चुनूँ या उसे क्या पसंद है। प्रकृति की लय में लय मिलाकर मस्ती में झूम रहे नागार्जुन की पंक्ति है –

"हिल रही – डुल रही खिल रही – खुल रही
पूनम की फागुनी रात
पकड़ी ने ढक लिए अपने सब गात।"[15]

नागार्जुन के लिए प्रकृति कोई जीवन से अलग चीज नहीं है। ऐसा लगता है कि इनके परिवार की एक सदस्य प्रकृति भी है। किसी खास क्षण में जैसे अपने प्रियजनों की याद आती है वैसे ही नागार्जुन किन्हीं भावुक क्षणों में प्रकृति की याद करते हैं जिससे उनका कभी सम्पर्क रहा होता है। यही नहीं, कई बार वे जहाँ होते हैं वहाँ की प्रकृति से ऐसा रिश्ता बना लेते हैं कि चलते समय विदाई लेनी पड़ती है। उनकी कविता है –

1. "लगता ही नहीं कि यह वही पेड़ है !
पिछले साल, जब हमने
इससे विदाई ली थी
यह हजार–हजार फलों से लद रहा था
रसीले–खटमिट्ठे फलों से !"[16]

2. "यात्रा के क्षणों में
इर्द–गिर्द दृष्टि गई

पल भर के लिए ...
काँप रहे थे
केले के नए–नए पात
हरे हरे पात
चीकने पात
साबित पात
विदा–वेला में
अनुमति में हिलते–से कोमल पात !
"फिर कब आओगे ?"
हल्की जिज्ञासा थी, इंगितमय –
'बुजुर्ग यायावर',
'सच, सच, बतलाना
'अब, कब आओगे ?'

जवाब में आँखें गीली हो आईं;
चुपचाप, ऊपर पगडण्डियों की ओर
बढ़ते गये पैर ..."[17]

प्रकृति से ऐसा पवित्र, निश्च्छल और सच्चा प्रेम ढूंढे ही मिलेगा।

नागार्जुन की कविता में शेष सृष्टि के साथ मानव के रागपूर्ण संबंध का निर्वाह और इस संबंध की रक्षा की भावना व्याप्त है। 'डियर तोताराम' में कवि कहता है –

"उल्टा लटककर
वो कुतर रहा है नाशपाती
दस का यह गुच्छा ही
इसे जाने क्यों भाया ?
लीजिए, हमारी आहट पाकर

वो उड़ गया ...
पहाड़ी तोता ..."[18]

इस सुन्दर प्राकृतिक दृश्य में कवि खो गया है और इस कविता का पाठक भी इसके सुन्दर बिम्ब में खो जाता है।

इस तरह प्रकृति के जिन सीधे–सादे रूपों को नागार्जुन ने लिया है उनका दायरा विशाल है। कहीं अति प्रिय रूप हैं तो कहीं अति साधारण रूप। लेकिन इन सभी रूपों में प्रकृति अपने स्वाभाविक रूप में विद्यमान है। नागार्जुन अपनी रुचि अनुरूप प्रकृति के रूपों की छवि निर्मित भी करते हैं।

(ख) प्रकृति का दृश्यात्मक वर्णन

नागार्जुन की कविताओं मे प्रकृति का एक रूप दृश्य वर्णन का मिलता है। सामने जैसा दिख रहा है उसे वैसा ही कविता में उतार दिया गया है। कईबार साहित्य–चिंतकों और काव्य शास्त्रियों के बीच इस पर चर्चा हुई है कि क्या अभिधा में भी महान कविता संभव है। क्या केवल दृश्य वर्णन को उत्तम कविता कहा जा सकता है। मेरे अनुसार अभिधा में अवश्य ही महान कविता संभव है। काव्य में दृश्य–वर्णन अभिधा में ही होते हैं। निराला की कविता 'संध्यासंदरी' अभिधा में लिखी गई अच्छी कविता है। 'रामचरितमानस' में राम के वनगमन का दृश्य अपने आप में उत्तम काव्य का उदाहरण है। इस स्थल पर साहित्याचार्य रामचन्द्र शुक्ल की पंक्ति का हवाला देना चाहता हूँ –

> "... इसी प्रकार प्राकृतिक दृश्यवर्णन मात्र की, चाहे कवि अपने हर्ष आदि का कुछ भी वर्णन न करे, हम काव्य कह सकते हैं। हिमालय वर्णन को यदि हम कुमारसंभव से निकालकर अलग कर लें तो वह एक उत्तम काव्य कहला सकता है।"[19]

नागार्जुन की ऐसी ही कविता है – बदलियाँ चलेंगी साथ।

"लगता है
सैर करने के मूड में
बदलियाँ इधर से ही
निकली हैं ...

भिगो गई हैं
भुरभुरे खेतों को
कोलतार–पुती पक्की सड़क की

बाँकी–तिरछी 'काया' को
बगीचियों के आम्र–कुंजों के
चिकने पातों को
तर कर गई हैं
चमक रहे हैं वे तोऽऽ।"[20]

एक अन्य कविता लें जिसमें एक अन्य दृश्य का वर्णन है। कवि 'जेठ मास' के बारे में सूचित कर रहा है –

"गुजर गया आधे से अधिक जेठ मास
पंक्तिबद्ध पुष्पित खड़े हैं अमलतास
दूर से तो दिखते हैं पीले–पीले उदास
छिपाये नहीं छिपता अन्दर का हुलास
फूल होंगे सौ हजार, पत्ते, ओफ्फो, सौ–पचास
गुजर गया आधे से अधिक जेठ मास।"[21]

इन कविताओं में व्याख्या की कोई गुंजाइश नहीं है। कवि प्रकृति–रूपों का दृश्यवत चित्रण कर रहा है।

प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन–क्रम में उल्लेखनीय है कि प्रकृति का एक रूप जिस पर नागार्जुन ने सर्वाधिक लिखा – 'बादल' है। बादल सभी को प्रिय हैं। ये केवल मौसम का मिजाज ही नहीं बदलते धरती का रूप भी बदल देते हैं। मानसून पर हुए नए अध्ययनों से अब यह हकीकत और भी स्पष्ट हो गई हैं कि भारतीय किसानों की धड़कन हैं ये बादल। कारण, कि इनसे एक बड़े वर्ग की रोजी रोटी चलती है। भारतीय किसानों की खेतीबारी इन्हीं के भरोसे तब भी थी, अब भी है। संभवतः इसीलिए बारिश की संभावना से ही कवि पुलकित हो उठता है। ठीक वैसे ही जैसे कोई किसान बारिश का कयास लगा बैल–हल ले खुशी–खुशी अपने जोत की ओर चल देता है। नागार्जुन बादलों की

एक–एक गतिविधि को भाँप रहे हैं और उन्हीं की लय में लय मिलाकर लिखते है –

"जाने, किधर से
चुपचाप आकर
हाथी सामने लेट गए हैं,
जाने किधर से
चुपचाप आकर
हाथी सामने बैठ गये हैं !
पहाड़ों – जैसे महाविशाल
भूरी रंगत वाले ...
... लो ये गिरि–कुंजर
और भी बड़े होने लगे
विशाल, महाविशाल
लो, ये दूर हट गए
... पूरे आसमान में
फैल जाएँगे
गर्जन–तर्जन नहीं
बरसेंगे, बस बरसते रहेंगे चुपचाप !
सारा–सारा दिन, सारी–सारी रात
बिना कहे, आपो आप
चुपचाप !!"[22]

इसी रंगत की एक दूसरी कविता है – 'रातों रात भिगो गए बादल' –

"मानसून उतरा है
जहरीखाल की पहाड़ियों पर
रातोरात
भिगो गए बादल

सलेटी छतों वाले
कच्चे–पक्के घरों को
रातोरात

सोंधी भाफ छोड़ रहे हैं
ज्यामितिक आकृतियों में
फैले हुए खेत।"[23]

इसी कविता में बरसात को कवि 'मौसम का पहला वरदान' कहता है, जो सभी तक पहुँचता है। पहाड़ों के दृश्य जो बड़े ही आम हैं – अचानक चारों तरफ से बादलों का आ जाना तो कभी कुहरे का छाना, कभी दोनों की आँखमिचौली। कवि बदलियों की रासलीला पर लिखता है –

"देखो, देखो !
बादलों को निगल गए कोहरे ...
देखो, देखो !
कोहरों को उगल रहे बादल ...
इनकी यह लीला अभी चलती रहेगी ...
चलता रहेगा 'रास' बदलियों का
काले–काले बादल
झूमते नजर आएँगे कभी–कभी।
कभी–कभी कोहरा ही कोहरा होगा इर्द–गिर्द ...
लगेगा कभी कि बादल
काफी नीचे झुक गए हैं
वो अपनी सूँड लटकाकर
झरनों से पानी लेंगे
एक–एक बूँद जल खींच लेंगे !

तब वो हाथी नज़र आएँगे
बादल नहीं होंगे तब ... ।"[24]

वैसे तो नागार्जुन ने बादलों के और भी बहुत–चित्र खींचे हैं, लेकिन उक्त चित्रों से उनकी वृत्ति स्पष्ट हो जाती है। बादल के ये चित्र कल्पना के माध्यम से बिम्ब निर्मित करते हैं जिसका दृश्यता सर्वभूत है।

प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण सदैव कमनीय रहा है। हम जानते हैं कि कवि प्रकृति के कई व्यापारों का परस्पर संबंध दिखाकर अधिक संश्लिष्ट योजना का प्रत्यक्षीकरण करवा सकता है, पर इसके लिए विस्तृत और गूढ़ निरीक्षण अपेक्षित होता है। 'बरसात' में नागार्जुन द्वारा प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण मिलता है, पर गुंजाइश अभी है इसे परिपाक नहीं कह सकते जो संस्कृत काव्यों में मिलता है। वाल्मीकि और कालिदास द्वारा वर्णित बरसात के चित्र का उल्लेख करते हुए शुक्ल जी लिखते हैं –

> "वाल्मीकि के 'मुक्तासकाशं' वाल श्लोक में पानी की बूँदों का आकाश से गिरना, गिरकर पत्तों की नोकों पर लगना और चिड़ियों के पंखों का बिगड़ना, चिड़ियों का पत्तों की नोक पर लगी बूँदों को पीना इतने अधिक व्यापार एक संबंध सूत्र में पिरोए गए हैं। इसी प्रकार कालिदास ने हिमालय के पवन के साथ भागीरथी के जलकण का फैलना, देवदारू के पेड़ों का काँपना, मोर की पूँछों का छितराना, किरातों का मृगों की खोज में निकलना और वायुसेवन करना, इतने व्यापारों को परस्पर संबंध दिखाया है।"[25]

अब नागार्जुन द्वारा चित्रित बरसात देखिए –

"विस्थापित होते हैं
बरसात में
कीड़े–मकोड़े
खिसकती हैं चट्टानें
शीला वृष्टि के
उछलते हैं रोड़े
गरजते हैं बादल के
घोड़े
हम भी मात्र
दर्शक रह जाते हैं
थोड़े !"[26]

प्रकृति संबंधी कविताओं पर गौर करने से पता चलता है कि प्रकृति के कुछ रूप नागार्जुन को अति प्रिय हैं, जो बार बार उनकी कविता में आते हैं। वर्फानी घाटियाँ, देवदार, चिनार आदि का बार–बार उल्लेख उनके पर्वतीय प्रकृति से सानिध्य का फल है –

1. "दस हजार फुट ऊँचाई पर, दुर्गम बर्फानी घाटी में
देवदार के सघन वनों में चुह–चुह करते फिरें छछुन्दर।"
(जयति–जयति सर्वमंगला)

2. "दुर्गम बर्फानी घाटी में
शत – सहस्र फुट ऊँचाई पर
अलख नाभि से उठने वाले
निज के ही उन्मादक परिमल –"
(बादल को घिरते देखा है)

3. "बरफ की सफेदी, चिनार, देवदार, अखरोट ..."
(मेरे बच्चे)

4. "सजीले, प्रिय देवदार !
कौन भला, तुमको –
यहाँ पर लाया उतार ?
तुम्हारी निवास भूमि
जलधि तल से
ऊपर, अति ऊपर
फुट जहाँ सात–आठ–नौ हजार
ओ, हे, तुम
पहाड़ी तरूओं में, पाहुन उदार
सजीले प्रिय देवदार।"

(सजीले प्रिय देवदार)

5. "रंग विरंगी फूलों वाली
हरियाली से ढकी पहाड़ी
देवदारू की, सरो–चीड़ की
कोसों फैली हुई कतारें
उन ऊँचे हिमालय शिखरों के
अद्‌भुत और विचित्र नजारे
इन दृश्यों के बीच बैठ जब
कालिदास के पद गाता हूँ
तब मैं तुम्हें भूल जाता हूँ।"

(तब मैं तुम्हें भूल जाता हूँ)

इस तरह की प्रकृति संबंधी कविताओं के अलावा नागार्जुन की प्रकृति संबंधी कई कविताएँ ऐसी हैं जो विवरण देती हुई हैं। अत्यंत साधारण शेली में एक कविता की आखिरी कुछ पंक्तियाँ देखिए –

"अरे हाँ, इस झुरमुट में
नीम भी छिपा है

नीचे गली के किनारे होता तो उसे
दतुअन बनाकर जाने कब
चबा गए होते !
गनीमत है –
गली के किनारे नीचे नहीं है खड़ा
नीम का यह पौधा बड़भागी है।"[27]

वस्तुतः ये कविताएँ ऐसी हैं जिनमें कवि का काई विवक्षित अर्थ नहीं है, न कोई सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिप्रेक्ष्य, न ही कोई अन्य सरोकार। सवाल है तब ऐसी कविता कवि ने लिखी ही क्यों ? इसका सीधा सा जवाब है कि कवि का अपने आसपड़ोस के सभी सजीव–निर्जीव से गहरा लगाव है। ये कवि के भावनात्मक संबंध की अभिव्यक्ति हैं। जिस प्रकार प्रत्येक मानव किसी सुन्दर रूप के प्रति आसक्त होता है उसी प्रकार कवि के लिए प्रकृति या जगत के छोटे–छोटे, यहाँ वहाँ विखरे रूप सौन्दर्य के आलंबन हुए हैं। जरूरी नहीं कि आलंबन का हर विषय महानता का सूचक हो, भव्य–विशाल और सर्वप्रिय हो। वह कुछ भी हो सकता है। आचार्य शुक्ल ने अपने निबंध 'काव्य में प्राकृतिक दृश्य' में लिखा है –

> "स्वाभाविक सहृदयता केवल अद्‌भुत, अनूठी, चमत्कारपूर्ण, विशद या असाधारण वस्तुओं पर मुग्ध होने में ही नहीं है। जितने आदमी भेड़ाघाट, गुलमर्ग आदि देखने जाते हैं वे सब प्रकृति के सच्चे आराधक नहीं होते, अधिकांश केवल तमाशबीन होते हैं। केवल असाधारणत्व के साक्षात्कार की यह रुचि स्थूल और भद्दी है और हृदय के गहरे तलों से संबंध नहीं रखती।"[28]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की ही मान्यता है कि – कविता में जब प्राकृतिक दृश्य का अवस्थान हो तो वहाँ 'अर्थग्रहण' से अधिक 'बिम्बग्रहण' अपेक्षित होता है। नागार्जुन प्राकृतिक दृश्यों का पाठक द्वारा 'बिम्बग्रहण' करवाने में बार–बार सफल हुए हैं। 'पीले आसमान में' नामक कविता में पूरा एक दृश्य आँखों में उतर जाता है। और पाठक भी वही अनुभव करता है जैसा कवि ने उस दृश्य से किया होगा –

"नीले आसमान में
उड़े जा रहे हैं
सफेद–सफेद बगुले
कितनी दूर मंजिल है ?
क्या आगे भी तलैया है कोई ?
वहाँ भी छोटी–छोटी मछलियाँ
इनका शिकार बनने को तैयार हैं ?
बच्चे ही नहीं सयाने भी
नीले, भूरे या काले पतंगे उड़ाकर
इन श्वेत विहंगों का
पीछा कर रहे हैं
नीले आसमान में।"

एक और उदाहरण बिम्ब का 'भरे भरे मायावी बादल' से '

"छोटे–बड़े मझोले बादल
आपस में कुश्तियाँ लड़ेंगे
अभी–अभी तो लगता मुझको
सचमुच ही ये बरस पड़ेंगे।"

प्रकृति के एक–एक अस्तित्व से नागार्जुन की आत्मीयता है। उससे केवल संबंध ही नहीं बनाते बल्कि संवाद करते हैं। प्रकृति से एक मित्र की तरह बात–चीत करने में

नागार्जुन का मन खूब रमता है। ऐसी ही एक कविता है – 'यह तो वो नहीं है' –

"यह तो वो नहीं है !
क्या मैं रोज यहीं बैठता था ?
क्या नाशपाती का वही पेड़ है यह ?
मैं ऐसे भला क्यों मान लूँ !
क्या हम इसी की छाँह में
विगत ग्रीष्म के
मध्याह्न गुजारते थे –
सफरी पलंग पर लेटकर
क्या हम यहीं बैठते थे
मूँज की रस्सियों वाले मूढ़े पर ?
ढाई साल वाले उस शिशु से
मैंने यहीं तो दोस्ती गाँठी थी ?"

नागार्जुन अपनी कुछ प्रकृति संबंधी अन्य कविताओं में भी प्रकृति से बातचीत करते मिलते हैं। इसे चाहे तो प्रकृति का मानवीकरण कह सकते हैं पर यह प्रसाद और निराला आदि के मानवीकरण से भिन्न है। वहाँ मानवीय भावनाओं, क्रियाव्यापारों की आयोजना प्रकृति करती है तो नागार्जुन के यहाँ प्रकृति की अपनी सत्ता स्वतंत्र रहती है। एक उदाहरण उनकी कविता 'एक पल' से –

"सगर की प्रशांत तरंगों से
बोलो :
(जब वो अच्छे मूड्स में हो)
तुम्हारा एक चहेता
तुम्हें सलाम भेज रहा है !
बार–बार अपना शीश झुकाकर
वो तुम तक अपने आकुल चुम्बन
पार्सल कर रहा है !!"

(ग) परंपरा और नए प्रयोग

नागार्जुन संस्कृत के अच्चे जानकार थे। उनकी कविताओं पर संस्कृत साहित्य का असर कई रूपों में दिखता है। वे कालिदास को अपनी कई कविताओं में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संबोधित करते हैं। इसके साथ ही वे संस्कृत पदों का भी जीभर इस्तेमाल करते हैं। उनके प्रथम काव्य संग्रह युगधारा में यह भली प्रकार दिखा है। 'इनकी लीला' नामक कविता में बादलों को इंगित करते हुए उनके शब्द –

"क्या ये वही हैं
जिन्होंने कालिदास को
अपनी तरफ खींचा था ?
क्या यही उस कवि को
उड़ा ले गए थे अलकापुरी ?
देखिए तो इनकी लीला !"[29]

'इत्ते अर्से बाद' से –

"मेघदूत के पद, विद्यापति के पद और चंडीदास के पद
क्या, वो तू कोई और थी ?
क्या, वो मैं कोई और था ?
सच सच बतला
ओ मेरी सनातन सहेली !
चन्द्रभागा, प्रिय सखी मेरी !!"[30]

पूर्व काव्य–परंपरा से जो उन्होंने ग्रहण किया उसके प्रति सम्मान उनमें आजीवन बना रहा। कालिदास और विद्यापति को बार–बार याद करना इस बात को सच साबित करता है। नागार्जुन 'वलाका' में लिखते हैं –

1 "काले बादल उड़े जा रहे
विरही कालिदास के मन में
मेघदूत का ध्यान आ रहे !"

2 "दूरागत वंशी–ध्वनि में सुन
श्रीराधा का नाम
हाथ जोड़कर विद्यापति को
मैंने किया प्रणाम।"[31]

नागार्जुन के काव्य संग्रहों को पढ़ते–पढ़ते एक बात मन में यह आई कि 'कबीर' अगर भाषा के डिक्टेटर थे तो नागार्जुन प्रकृति के डिक्टेटर हैं। जब जो चाहा प्रकृति को बना दिया, प्रकृति से कहला दिया। बन पड़ा तो सीधे सीधे नहीं तो दरेरा देकर। आलम यह है कि कभी प्रकृति मौत का माहौल भी बना दती है और कभी उसी प्रकृति से कवि मस्ती की समा बाँध देता है। एक छोटा सा उदाहरण –

"बादल चक्कर लगा रहे हैं
हवा उन्हें बहला रही है
फुसला रही है।
जेठ अभी–अभी गुजरा है –"[32]

कितनी ताजगी, कितनी मिठास है इन पंक्तियों में जैसा कि छायावादी प्रगीतों में अक्सर मिला करता है।

दूसरी तरफ नागार्जुन कभी भी कविता को अजायबघर की अजीब वस्तु नहीं बनने देते। क्या विद्वान, क्या किसान, क्या मजदूर और क्या गँवार सभी कोई नागार्जुन की अधिकांश कविताओं का रस ग्रहण कर सकता है। उनकी कविताओं में लोकजीवन से संपृक्ति सर्वल मिलती है। 'बादल चक्कर लगा रहे हैं' कविता में आगे की पंक्ति है –

"जमकर वर्षा हो तो –
धरती का दिल जुड़ा रहे
मगर, आवारा बादल
पसंद करते हैं सुनना
खेतिहरों की गालियाँ।
हवा उन्हें फुसला रही है
बहका रही है
छलावे में ठहला रही है !"[33]

परंपरा से प्रकृति के वे रूप जो तुच्छ, विद्रूप और त्याज्य समझे जाते रहे हैं कवि ने उन रूपों में सौन्दर्य देखा। यह उसकी समाजवादी दृष्टिकोण का परिचायक है। यही है प्रेमचंद के शब्दों में 'हुस्न का बदला हुआ मयार'। जिसमें सूअर पर एक से अधिक बार कविता हुई है –

"बारह छौनोंवाली –
मादा सुअर की तरह
लेटी रहती हूँ
मुझे सुकून मिलता है
दुर्गन्धित कीचड़ की मुलायम सेज पर।

... लेकिन, मैं तो नापाक हूँ,
अदना–सी मादा सूअर हूँ !
मुझे क्या पता, हिमालय क्या होता है।
क्या होता है कैलास ! ... "[34]

कवि परंपरा से अलग हटकर वर्ण्य–विषय का चयन नागार्जुन की एक विशेषता है। उपेक्षित समझा गया 'कीचड़' और उस कीचड़ में चलना, नदी किनारे की घास–फूस

की ओस से शरीर में हुई छुअन की याद अभी तक कवि को है –

"टाँगें गल जायेंगी
सरिता की कछार में
पंक ही पंक है
धँसना तो पड़ेगा ही
कर्दम का तुहिनमय स्पर्श ...
कंपन की पराकाष्ठा ...
जड़िमा में डूब गया स्पर्श–बोध ...
रगों में प्रवहमान रक्त
जम गया मानों !
जय हे कीचड़, जय हे पंक !"[35]

नागार्जुन ने प्रकृति का इस्तेमाल केवल पाठक को गुदगुदाने और लुभाने के लिए ही नहीं किया है। वरन् (प्रकृति) उसके असहज रूप (मौत की घड़ी) को भी उतनी ही शिद्दत से उकेरा है। 'फाँद–फूँदकर' कविता की पंक्ति है –

"कैसा भी घना कोहरा हो
अन्धेरी रात हो सावन भादों वाली
गाढ़ी–बदबूदार –
कीचड़ दूर–दूर तक
आमने–सामने,
दखल जमाए हो
मौत पहुँच लेती है फाँद–फूँदकर ..."

यहाँ मृत्यु के आने की घड़ी के साथ–साथ प्रकृति का रूप भी कुछ अप्रीतिकर, कुछ रुका हुआ सा दिखता है। यहाँ कवि कल्पना रचित सादृश्य विधान खूब सटीक है।

कोहरे पर भी नागार्जुन ने खूब लिखा है। प्रकृति का यह रूप सर्दियों में सर्वत्र एवं ऊँचे पहाड़ों पर सदैव मौजूद रहता है। पहाड़ों पर ऊँचाई से देखने पर दूर बसे छोटे–छोटे गाँव दिखते हैं। कवि के शब्दों में 'सलेटी छतों वाले गाँव' कुहरे में ढके हैं। कविता है, 'सब कुछ कोहरे में' –

"अभी नहीं आएगी नज़र
लंबे पतले चीड़ों की
बे–तरतीब कतार
अभी नहीं आएगी नज़र
चाँदी–सी चमकती
बाँकी–तिर्छी धार ...
नहीं, नहीं, अभी नहीं ...
अभी तो ऽऽऽ
जी हाँ, अभी तो –
डूबा है सब कुछ कोहरे में !
निचले–उपरले गाँव ...
आवारा बादलों की छाँव ...
चीड़ों की कतार
पानी की पतली धार,
डूबा है सब कुछ कोहरे में !"[38]

पहाड़ी दृश्य का कितना सजीव चित्रण है। कुछ शब्द ध्यान देने लायक हैं – आवारा बादल, चीड़ों की कतार, बाँकी–तिर्छी धार, कोहरा में डूबा – इससे कवि के सूक्ष्म अवलोकन का पता चलता है। इसी क्रम में एक अन्य कविता है – 'शिखरों पर' –

"ये तुंग–शृंग, ये अद्‌भुत
शिखरों पर शिखर जमे हैं

ये रजत – राशि नैसर्गिक
इन पर कैलास थमे हैं

इनकी छवि–छटा निराली
वह धौली–भूरी–काली
बालारुण इनमें भरता
पिघले कंचन की लाली।"[36]

जगत की अत्यंत साधारण वस्तु या बात पर भी नागार्जुन की लेखनी अपनी गति बनाए रखती है। हाथी को विषय बनाती उनकी कविता है –

"तुम्हारी आँखें छोटी हैं
दाँत बड़े–बड़े हैं –
बाहर निकले हुए, झक सफेद डील–डौल भारी है।
तुम काले हो
शाकाहारी जीव
लम्बी सूँड़ ही तुम्हारी नाक है
अपनी सूँड से
आप कई काम लेते हो
धीर प्रकृति के
ओ चलते–फिरते पहाड़ !"[37]

कई बार कविता का विषय बहुत कसा हुआ नहीं भी होता है। प्रथम दृष्टया कविता को लिखने का अभिप्राय भी स्पष्ट नहीं हो पाता। ऐसी ही एक कविता है – गढ़ की गंगा –

"गढ़ की गंगा
दुबली गंगा

पतली गंगा
कोसों फैला
रेतीला विभ्राट दिख रहा
नंगम नंगा, नंगम नंगा, नंगम नंगा

कौन कहेगा – अरे
यहीं पर मेला–ठेला
जुटा करे हैं ...
गहमा गहमी, संगम संग
डूब लगाए भगत भाओ से
एक एक भिखमंगा !"[38]

नागार्जुन की प्रकृति संबंधित कुछ कविताओं को पढ़ने से ऐसा लगता है कि उनका प्रकृति से पारिवारिक रिश्ता है। प्रस्तुत प्रकृति उनके परिवार की सदस्य की भाँति लगती है। 'उसे हड़बड़ी थी' एक ऐसी कविता है। इस कविता में झेलम नदी को कवि अपने ऊपर बहता महसूस कर रहा है। यानी, भूमि का वह भाग जो नदी की तली है कवि का अपना शरीर है –

"पिछली रात
ठीक 3.22 पर एक हादसा हुआ ...
मई–जून की वो भरी–पूरी झेलम
नील–निर्मल प्रवाहों वाली वो वितस्ता
मेरे ऊपर से होकर गुजरी – पिछली रात !
लगातार आधा घंटा तक, नहीं 45 मिनट लगे !
प्रवाहित होती रही मुझ पर से
मैं लेटा रहा, निमीलित–नेत्र
मन ही मन जागरूक, मोद–मग्न ...

आशीष की मुद्रा में मेरे होठ हिलते रहे
जी हाँ, मैं मगन–मन लेटा रहा उतनी देर
जी हाँ, झेलम को हड़बड़ी थी –
वो सिन्ध से मिलने जा रही थी
मुझे झेलम पिछली रात निहाल कर गई !"[39]

प्रकृति पर ऐसी अनूठी कविताएँ हिन्दी साहित्य की थाती हैं।

प्रकृति के ऐसे दृश्य, ऐसी घटनाएँ जिन पर शायद ही किसी की नज़र कभी टिकी हो, किसी ने ठहर कर कुछ देर देखा हो, इतनी छोटी–छोटी बातों तक भी कवि की नज़र गई है। पहाड़ी गाँवों के पास के मुख्य रास्ते से दूर पगडंडियाँ हैं जो भारवाही खच्चरों के खुरो से रौंदी हुई हैं – इस पर कवि मोहित ही नहीं है, बल्कि रोज रात के अंतिम पहर में भारवाही खच्चरों की घंटियाँ सुनता है। कविता है – 'सुन रहा हूँ ...। इसी क्रम में एक अन्य कविता है – 'ध्यानमग्न वक शिरोमणि' –

"ध्यानमग्न
वक – शिरोमणि
पतली टाँगों के सहारे
जमे हैं झील के किनारे
जाने कौन हैं 'इष्टदेव' आपके !"[40]

'मैं मेघवाहन हूँ' – कविता में कवि बादलों को अपने भीतर घुसता महसूस कर रहा है –

"सावनी बदलियाँ
मेरे रोम कूपों के अन्दर
समाती जा रही हैं
मेघ टहल – बूल रहे हैं

मेरे साथ–साथ
लगता है, मैं मेघवाहन हूँ।"

ये कविताएँ अनुभव सम्मत भावावेग से ओत–प्रोत हैं जो अपनी भाषा, बनावट और सादगी के चलते सबको पसंद आती हैं। काव्य परंपरा में बादलों पर कविताएँ खूब मिलेंगी। कहीं 'नीर भरी दुख की बदली', तो कहीं क्रांति के प्रतीक के रूप में। लेकिन नागार्जुन परंपरा से अलग बादल के साथ–साथ घूमते फिरते हैं उसकी सवारी करते हैं। बादल को इस ढंग से देखना नागार्जुन की आत्मीयता का प्रतिफल है।

(घ) प्रकृति और मानव जीवन के विविध रूप

नागार्जुन की प्रकृति संबंधी कविताएँ मात्र प्रकृति–चित्रण के उद्‌देश्य से नहीं लिखी गई हैं। उनके प्रकृति–चित्रण में युगीन स्थितियाँ–परिस्थितियाँ भी पूर्णता के साथ विद्यमान हैं। ऐसा नहीं है कि इन कविताओं को लिखते हुए वे अपनी सामाजिक और राजनीतिक चेतना को अलग रख देते हैं। जनता के प्रति उनकी प्रतिबद्धता कब कहाँ झलक मार देगी शायद वे भी नहीं जानते। 'मैंने देखा' कविता इसका अच्छा उदाहरण है। इस कविता में एक दृश्य ऐसा आया है जिसमें आग लगने का वर्णन है। इस वर्णन के अंत में कवि की निजी सहानुभूति उजागर हो उठी है –

"मैंने देखा :
शिखरों पर
दस–दस त्रि–कूट हैं
यहाँ–वहाँ पर चित्र–कूट हैं
बाएँ–दाएँ तलहटियों तक
फैले इनके जटा–जूट हैं
सूखे झरनों के निशान हैं
तीन पथों में बहने वाली
गंगा के महिमा–बखान हैं
दस झोपड़ियाँ, दो मकान हैं
इनकी आभा दमक रही है
इनका चूना चमक रहा है
इनके मालिक वे किसान हैं
जिनके लड़क मैदानों में
युग की डाँट–डपट सहते हैं
दफ्तर में भी चुप रहते हैं।"[41]

इसी तरह 'जयति जयति जय सर्व मंगला' शीर्षक कविता में नागार्जुन लिखते हैं –

"पूस मास की धूप सुहावन
घिसे हुए पीतल–सी पांडुर
पूस मास की धूप सुहावन
स्तनपायी नीरोग और छवि
शिशु के गालों जैसी मनहर
पूस मास की धूप सुहावन
फटी दरी पर बैठा है चिर–रोगी बेटा
राशन के चावल से कंकड़ बीन रही पत्नी बेचारी
गर्भ–भार से अलस शिथिल हैं अंग–अंग,
मुँह पर उसके मटमैली आभा
छप्पर पर बैठी है बिल्ली
किसके घर से जाने क्या कुछ खा आई है
चला चलाकर जीभ स्वाद लेती होंठों का।"[42]

यहाँ प्रकृति के माध्यम से वर्तमान समाज पर व्यंग्य किया गया है। पूस की सुहावनी धूप जो सबको प्रिय है, कवि को निरर्थक लगती है। कारण कि वर्तमान समाज से कवि आहत है। जब ढेर सारी समस्याएँ सामने विराजती हों तो कैसी सुहावनी धूप, कैसा आनंद। जनता की पीड़ा को कवि आत्मभूत करता है। जो धूप चावल, रोटी, भाजी नहीं पका सकती वह 'पीतल–सी पांडुर' ही होगी। यानी, आम जनता की मोटी–मोटी जरूरतें न पूरी हों तो नागार्जुन जैसे जागरूक कवि को क्यों सब कुछ सुन्दर सुन्दर लगे।

कहीं कहीं जनता के सामाजिक आर्थिक राजनीतिक असंतोष को नागार्जुन प्रकृति के माध्यम से बयाँ करते हैं –

"काले–काले ऋतु–रंग
काली–काली घन–घटा

काले–काले गिरि शृंग
काली–काली छवि–छटा ...
काले–काले परिवेश
काली–काली करतूत

काली–काली करतूत
काले–काले परिवेश
कली–काली महँगाई
काले–काले अध्यादेश।"[43]

यहाँ आये प्रकृति रूप – घन–घटा, गिरिशृंग और ऋतुरंग केवल प्रकृति के रूप नहीं हैं बल्कि इनसे कवि ने परिवेश में व्याप्त असंतोष उजागर किया है। काला, अँधेरा, मुक्तिबोध का प्रिय शब्द है। यह शब्द नागार्जुन के यहाँ बहुत कम आता है। इस कविता में काली–काली महँगाई और काले काले अध्यादेश के जरिए कवि राजनैतिक कुशासन और व्यवस्था–तंत्र की खामियों को व्यंग्यात्मक लहजे में व्यक्त करता है।

'भोजपुर' नामक कविता में प्रकृति का एकदम अलग रूप है। यहाँ प्रकृति क्रांतिकारी भावना से जुड़कर आई है –

"भोजपुरी माटी सोंधी है,
इसका यह अद्‌भुत सोंधापन !
लहरा उट्ठी है
कदम–कदम पर, इस माटी पर !
महामुक्ति की अग्नि–गंध
ठहरो–ठहरो इन नथनों में इसको भर लूँ
अपना जनम स–कारथ कर लूँ !"[44]

इस कविता में नागार्जुन का माटी से प्रेम की ही अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि वह

प्रेरणा स्रोत हैं क्रांति की अग्नि को लहराने का। यह माटी मुक्तिकामी आंदोलन की रीढ़ बनती है।

'पुरानी जूतियों का कोरस' नामक संग्रह में नागार्जुन ने कई व्यक्ति–आधारित सुन्दर कविताएँ लिखी हैं। कहने के लिए तो उन कविताओं का विषय एक व्यक्ति है पर बात इससे अधिक है। एक व्यक्ति के जरिए उस समय की पूरी स्थितियाँ, समस्याएँ, कमजोरियाँ और जनता की आकांक्षा सभी कुछ आ जाता है। वैसे ही उसी संग्रह में एक कविता है 'सिन्धु नद', जो सिर्फ नदी के सौन्दर्य की आत्मकथ नहीं कहती, वरन् इसके माध्यम से कवि देश के इतिहास, देश की वर्तमान दशा और अनेकानेक बातों को सामने लाता है। उससे प्रेरणा ग्रहण करता है। इस लंबी कविता के कुछ अंश उद्धृत हैं –

"अपनी निधि, अपना अमृत द्रव
अपना जीवन, बस सबका सब
लेकर पश्चिम की ओर बहे
हे निर्मम, तुमको कौन कहे
हो गया हाय, पूरब उजाड़
खिंच गया खून, रह गया हाड़
मत जाओ मिलने सागर से
सन्तोष करो इस सागर से
पर, सिन्ध, तुम्हारी बात और
आख्यान और इतिहास और
इस महादेश की जनता का
तेरे प्रति है विश्वास और
हे दूत, महान हिमालय के
सन्देश सुनाना भूल गये
तुम बने इधर चिर मूक, उधर

लाखों फाँसी पर झूल गये
हे महामहिम, बस हमको तो
वह याद जमाना आता है
इस तट पर वीर सिकंदर–सा
कोई दीवाना आता है।

वह चन्द्रगुप्त है खेल चुका
तेरे समक्ष नाटक सुखांत
बोलन की घाटी इधर, उधर –
सतलज का आँचल है गवाह
अपनी बाहों से दुश्मन की
तुमने रोकी है सदा राह

आदिम मानव करता होगा
जब इस धारा में जल विहार !
तेरे तट पर दाएँ–बाएँ
चरती होंगी कपिला गाएँ।"[45]

सिंधु नदी से भारतीय जन–मानस के लगाव शाश्वत है। यह नदी हमारी सीमा की प्रहरी रही है। इसने कई योद्धाओं को हम तक पहुँचने से रोका है, हमारी रक्षा की है। भारत–भूमि या संपूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप की खुशहाली में इसकी बड़ी भूमिका रही है। कवि सिंधु नदी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है। प्राचीन काल में यह नदी व्यापार का जरिया थी –

"सौ–सौ ऊँटों की वह कतार
तुमने देखी है कई बार

अपनी छाती पर से जाते
ईरान अरब की ओर अरे !"

वेदों की रचना भी इसी की घाटी में संपन्न हुई है। माहनजोदड़ो को धन्य करने वाली नदी, जिसके तट पर ऋषिगण संध्या वंदन करते थे। जहाँ सूफी संत अपनी तान मिलाते थे। जिस नदी ने बौद्ध, जैन, इस्लाम, सिक्ख सबको देखा हो उसे कोई शक्ति कैसे बाँध पायेगी।

एक नदी के माध्यम से इतनी बातें कहने की परंपरा हिन्दी साहित्य में नहीं रही। नागार्जुन ने सिन्धु नदी के माध्यम से देश की जनता और उसके जीवन से जुड़ी बड़ी–बड़ी बातें बड़े सहज ढंग से कह दी है। नागार्जुन ने हर अमानवीय चेहरों को बेनकान करने की कोशिश की है। यह बात अलग है कि कुछ अन्य कवियों की तरह उन्होंने विषय वस्तु को वैचारिकता के शुष्क आवरण में पेश नहीं किया। उनकी एक सर्वाधिक मशहूर कविता है – 'बादल को घिरते देखा है' – इसे प्रकृति का ललित चित्र समझा जाता रहा है। लेकिन कवि की मंशा इसके आगे भी है। इस कविता में प्रकृति–चित्रण के बहाने कवि ने देश क ऊपर मँडराते हुए साम्राज्यवाद के खतरे को संकेतित किया है। भारतवर्ष का स्वरूप अमल, धवल और निर्मल है। इस पर बादलों का घिरना कुचक्र का प्रतीक है। याद रखना चाहिए कि इस रचना का लेखन समय 1939 है। यह द्वितीय विश्वयुद्ध की पूर्वभूमि में लिखी गई कविता है। प्रकृति के आवरण में कवि ने दो विपरीत भावों को रखा है। एक तरफ श्यामल–नील सलिल है तो दूसरी तरफ पावस ऋतु की उमस। एक तरफ तिक्तता हे तो दूसरी तरफ मधुरता। कविता का यह तनाव कविता के बाहर की दुनिया के द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व के अंदर–अंदर के असंतोष और आशंका का प्रतीक है। विश्वयुद्ध के आसन्न खतरे से उपजी यह कविता गोरी जाति के नस्लवाद, उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद की प्रवृत्ति की ओर संकेत करती है। इससे पूरे वातावरण में आशंका के बादल घिरते

दिखाई पड़ रहे हैं। हालाँकि इस कविता को प्रकृति वर्णन की कविता मानकर भी पढ़ा जा सकता है।

नागार्जुन ने प्रकृति की गोद में पले बढ़े आदिवासियों की उनके जंगल, जमीन से बेदखली के खिलाफ कविता लिखी। प्रकृति और प्रकृति के रक्षक दोनों को बचाने की लालसा से अभिभूत कविता है – 'दरख्तों की सघन बगीची में' –

"जंगल और पहाड़, हमारे बाप हैं, चाचा हैं
नदियाँ हमारी माँ हैं, मौसी मामी हैं
झरने हैं हमारे सगे
ये खोह, वो झुरमुट, वो कछार,
पत्तों–टहनियों से छाई हुई ये झोपड़ियाँ
ये हैं हमारे गाँव, शहर, जिला ...

देखो न,
करखाना के नाम पर
पिछले दस पन्द्रह साल के अन्दर
हमारे सारे जंगल हम से
छीन लिए हैं उन लोगों ने।"[46]

प्रकृति की चिंता नागार्जुन को है यह उनकी कई कविताओं से प्रकट होता है। उनकी कविता है – 'नंगे तरू हैं, नंगी डालें' –

"मौसम के जादू मचलेंगे
कब इनमें टेसू निकलेंगे
हरियाली का छाजन होगा
आसमान कब साजन होगा
अब भी तो पतझर थक जाए

इनका नंगापन ढक जाए
हरियाली इन पर झुक आए
नग्न नृत्य अब भी रुक जाए
नंगे तरू हैं, नंगी डालें ...
इन्हें कौन से हाथ संभालें !"[47]

अपनी एक कविता 'बार–बार हारा है' में कवि खुद को 'मैं' के जरिए कई रूपों में कल्पित देखता है। जैसे –

"नारिकेल के कुंज वनों का
मैं भोला–भाषा अधिवासी

x x x

मैं धरती का प्यारा शिशु हूँ

x x x

मैं तो वो कच्छी किसान हूँ

x x x

सौ–हजार नवजात केकड़े
फैले हैं गुनगुनी धूप में
देखो तो इनकी यह फुर्ती
वरूण देव को कितनी प्रिय है !
मैं भी इन पर बलि–बलि जाऊँ !

x x x

गोआ तट का **मैं** मछुआरा
सागर की उद्दाम तरंगे
मुझसे कानाफूसी करतीं।"[48]

नागार्जुन जब प्रकृति के बीच होते हैं तब उनका अपना अस्तित्व नहीं होता। उनकी अनुभूति में सबकी अनुभूति जगह पाती है।

प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन से उत्पन्न वैश्विक ऊष्मीकरण जैसी पर्यावरणीय चिन्ता भी नागार्जुन के यहाँ कविता की विषयवस्तु हुई है। एक कविता का शीर्षक 'जागते रहे निरंतर' हमें सावधान करता हुआ प्रतीत होता है। कवि प्रकृति यानी हरियाली, घास–दूब, पशु–पक्षी किसी की भी अनदेखी नहीं करता। उसके हृदय में पूरी सृष्टि के प्रति करुणा है। सन् 1988 की यह कविता आज के प्रकृति–बचाओ या पर्यावरण–संरक्षण की चिन्ता से सीधे जुड़ती है या कहें कि कवि की चेतावनी आज सच साबित हुई है कि –

"नाम नहीं होगा हरियाली का
पेड़–पौधे सूखेंगे
न होगी घास, दूब नहीं दिखेगी
परिणत होंगे सारे ही खेत
चटियल मैदानों में
छोड़ेगी जहरीला भाप
मरी हुई मछलियों वाली तलइया
पटापट बेहोश होंगे ढोर–डंगर
ग्रीष्म के अतिरिक्त
नाम–शेष होंगी बाकी सब ऋतुएँ।"[49]

प्रकृति कभी कभी मानवीय भावों को व्यक्त करने का भी साधन बनी है। ऐसी ही व्यंजना इन पंक्तियों की है –

"मरू गिरि कानन शांति चाहते
सभी मृत्यु से त्राण चाहते।"[50]

नागार्जुन पर केन्द्रित एक साक्षात्कार के दौरान मैनेजर पाण्डेय ने कहा था –

"... नागार्जुन अपने समय और समाज को एक संवेदनशील और सजग

किसान की आँखों से देखते हैं और किसान की जिन्दगी का प्रकृति से जैसा अंतरंग संबंध होता है वैसा शहरी जीवन में नहीं होता। किसान की जिन्दगी का कोई पक्ष प्रकृति से एकदम अलग और कटा हुआ नहीं होता।"[51]

'मेरे जादू से' नामक कविता में नागार्जुन जगत की नश्वरता को समझते हुए प्रकृति से शाश्वत संबंध बनाए रखना चाहते हैं। उन्हें पाषाण तुल्य अचलता, निष्क्रियता और जड़ता की बजाय हवा की गति के संग चलने–उड़ने वाली राख कहीं अधिक प्रीतिकर है –

"आज
वर्तमान हूँ
कल 'विगत' कहलाऊँ
परसों मुझे अतीत कहेंगे
और ?
अगले दिन पत्थर बन जाऊँ शायद !
पुरातत्व में शामिल कर लिया जाऊँ शायद !
नहीं, नहीं, नहीं
मुझे ले चलो उठाकर
अभी, अभी, अभी ...
घास–फूस के नीचे दबाकर
फूँक देना मुझको ...
राख बनकर
उड़ती फिरूँगी
मेरे जादू से
धरती उर्वर होगी।"[52]

कवि की संवेदनशीलता से रू–ब–रू करवाने में ये निम्नलिखित पंक्तियाँ काफी हद तक मददगार हैं –

"अपना न हो तो
क्रंदन भी
कानों को
भा सकता है ...
स्वजन–परिजन,
चहेते पशु–पक्षी,
निकटवर्ती बगिया के
फूँलों पर मँडराते
सुपरिचित भ्रमर,
किसी का आर्तनाद
दुखा जाता है मेरा दिल ...।"

कितनी गहरी संवेदनशीलता का परिचय मिलता है। इसी कविता में आगे, कैसे एक छोटी–सी अतिसाधारण घटना से कवि का कोमल हृदय मर्माहत होता है, एक मेढ़क के प्रति –

"साँप के जबड़ों में फँसा था वो
कर रहा था
चीत्कार निरन्तर
मेढ़क बेचारा ...
हमारी पड़ोस वाली
तलइया के किनारे ...
हाय राम, तुझे –
काल – कवलित होना था यहीं !"[53]

नागार्जुन ने आपातकाल के दिनों में जो प्रकृति संबंधी कविताएँ लिखीं उससे स्पष्ट होता है कि वे प्रकृति को अपने संघर्षों, जीवन की विषम परिस्थितियों से उत्पन्न तनाव और कटुता से मुक्त होने और ताजगी के स्रोत और आधार के रूप में ग्रहण करने वाले कवि हैं। अकारण नहीं है कि अपने अंतर की इस बेचैन अवस्था में नागार्जुन बार–बार चाँद को याद करते हैं – (पीपल के पत्तों पर फिसल रही चाँदनी) सलाखों से भाल टिकाकर सोचते हैं – 'चाँद पूछेगा न दिल का हाल'। सींखचों के भीतर से उन्होंने चाँदनी को कई कविताओं में देखा है वो चाँदनी, ये सींखचें।

इसके अलावा भी प्रकृति–चित्रण के कुछ और रूप नागार्जुन के यहाँ मिलते हैं। प्रकृति–चित्रण के एक भिन्न रूप को लक्ष्य करते हुए मैनेजर पाण्डेय ने ठीक ही कहा है कि नागार्जुन की प्रकृति संबंधी कविताएँ अतीत और वर्तमान के द्वन्द्व से युक्त हैं।[54] ऐसे द्वन्द्व की कविता है – 'हमें वापस दे दो' –

"हमारी लंगोटी
हमें वापस दे दे।
तूमने हमारी धरती को
सितुआ–जितना छोटी आकार का
बना दिया
– हमारी धरती हमें वापस दे दो
हमें 'झंडे वाली आजादी नहीं चाहिए
वापस लेके रहेंगे
हम अपने जंगल
अपनी पहाड़ियाँ
अपनी लाल मिट्टी
खबरदार ! खबरदार !!
हम भूले नहीं हैं तीर–धनुष चलाना
हमें नहीं चाहिए तुम्हारा पटना।"[55]

इस कविता की खास विशेषता है कि इसमें जो जनसमूह हैं, उसकी स्वतंत्रता, अस्मिता की चाह प्रकृति से जुड़कर आत्म गौरव का भाव जगा रही है। वह अपने अतीत से वर्तमान स्थिति की तुलना करके क्षुब्ध है इसीलिए परिवर्तनकामी मन आकुलता में ललकार रहा है –

"अपना नमक–भात, अपना पानी
अपनी धरती, अपना जंगल
अपना आसमान –
सभी कुछ वापस ले के रहेंगे
बस अभी तो हमारी लंगोटी दे दे !!"[56]

कुछ कविताएँ नागार्जुन की लीक से हटकर उनके रचनाओं की स्वाभाविक प्रवृत्ति के बाहर की हैं, यानी मुख्य धारा की नहीं है। 'समझ गया मैं तेरी माया' ऐसी ही कविता है –

"देख चुका हूँ मैं ज्योति निराली
अंधकार में ठोकर खाकर
गिरते पड़ते ऊपर जाकर
बैठ हिमालय की गोदी में
मैंने तेरी झाँकी पा ली
मृगतृष्णा के पीछे पड़कर
रहा भटकता प्रभु जीवन भर
रात गई अब हुआ सबेरा
दीख रही पूरब में लाली
साध्य एक पर साधन बहुबिध
इष्ट एक, आराधन बहुबिध
समझ गया मैं तेरी माया
है कितनी उलझाने वाली
देख चुका मैं ज्योति निराली।"[57]

यद्यपि यहाँ प्रकृति पर आध्यात्मिक छाया दिख रही है किंतु यह परमसत्ता का गुणगान है, रहस्यवाद नहीं। ऐसे उदाहरण नागार्जुन की कविता में दुर्लभ हैं।

नागार्जुन अपनी कुछ कविताओं में प्रकृति पर सीधे सीधे न लिखकर भी प्रकृति की बात करते हैं। आधुनिक समय में समाज का एक बड़ा वर्ग गाँव देहात छोड़कर शहर चला जाता है। शहर जाकर वह या तो नौकरीपेशा हो जाता है अथवा कोई छोटा मोटा काम–धंधा करता है। यह वर्ग क्रमशः अपनी जड़ से दूर होता चला जाता है। जड़ों से कट जाने के परिणामस्वरूप जो समस्यएँ सामने आती हैं, उसका वर्णन तो अन्य अनेक कवियों के यहाँ मिल जाएगा। नागार्जुन इस समस्या को बिल्कुल दूसरे रूप में लेते हैं। गाँव से कटा हुआ व्यक्ति जो अपनी फेमिली को घर गाँव की तरफ झाँकने नहीं देता, उसकी संवेदना मर चुकी होती है। प्रकृति की गोद में बसे हुए गाँवों की प्राकृतिक शोभा नागार्जुन को शुरू से ही आकर्षित करती रही है। अपने परिवार को घर न जाने देना उसे प्रकृति से काट देना है। नागार्जुन की मूल चिंता प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति मनुष्य की समाप्त हो रही मनोवृत्ति है। वे मानव मन की अंतरंग परतों को बड़ी आसानी से खोल देते हैं और साथ ही साथ व्यक्त कर देते हैं – अपना भाव –

"हमने सुना है
तुमने अपनी फेमिली को
कभी गाँव–घर की ओर
झाँकने तक नहीं दिया है
यह कैसी शर्म की बात है।"[58]

नागार्जुन की 'अपने बच्चों को' शीर्षक यह कविता प्रकृति से अपरिचय पर मार्मिक टिप्पणी है। कवि की यह नाराजगी उसके प्रकृति प्रेम का ही एक रूप है। शुक्ल जी की निम्नलिखित पंक्तियों के साथ पढ़ने पर यह पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृति से समीपता क्यों वांछित है ?

"बिजली से जगमगाते हुए अँगरेजी ढंग के शहरों में, धुआँ उगलती मिलों और ह्वाइट वे लेडला की दूकान के सामने, हम कालिदास आदि से अपने को बहुत दूर पाते हैं। पर प्रकृति के विस्तृत क्षेत्र में हमारा उनका भेदभाव मिट जाता है, हम सामान्य परिस्थिति के साक्षात्कार द्वारा चिरकालव्यापी शुद्ध 'मनुष्यत्व' का अनुभव करते हैं, किसी विशेष–काल–बद्ध मनुष्य का नहीं। ... अग्निमित्र, विक्रमादित्य आदि को अब हम नहीं देख सकते। उनकी आकृति वहन करने वाला आलोक अब न जाने किस लोक में पहुँचा होगा; पर ऐसी वस्तुएँ अब भी हम देख सते हैं जिन्हें उन्होंने भी देखा होगा।"[59]

अपनी परंपरा, अपने इतिहास अपनी सांस्कृतिक विरासत के प्रति प्रेम रखने वाला, सम्मान का भाव धारण करने वाला हृदय कभी प्रकृति–विमुख नहीं हो सकता। उसके विराट हृदय और चेतना का प्रसार किसी रेखा के भीतर नहीं सिमट कर रह सकता।

इस तरह से हम कह सकते हैं कि आरंभ से ही नागार्जुन की कविताओं का एक बड़ा हिस्सा प्रकृति से संबंधित रहा है। प्रकृति उन्हें आकर्षित करती रही है और उनका यात्री मन उसमें रमता रहा है। प्रकृति से इस गहरे जुड़ाव के कारण नागार्जुन ने उससे एक नया रचनात्मक रिश्ता बनाया है। वे प्रकृति का महज दृश्य वर्णन नहीं करते बल्कि उसे मानवीय संवेदना से सीधे जोड़कर देखते हैं। यह संवेदनात्मक जुड़ाव इस हद तक है कि प्रकृति नागार्जुन के जीने में शामिल है। यही वजह है कि प्रकृति के परिवर्तित होते संस्पर्श उनकी मनःस्थितियों के बदलाव के भी कारण बनते हैं। ये कविताएँ 'प्रकृति काव्य' होकर भी महज प्रकृति के बारे में नहीं हैं बल्कि कुल मिलाकर मनुष्य की जिन्दगी के संघर्ष और उसके हर्ष–विषाद के बारे में ही है। यही जनकवि नागार्जुन के काव्य का मूल कथ्य भी रहा है।[60]

संदर्भ सूची

1 नागार्जुन, सतरंगे पंखों वाली, पृ. 52–53

2 नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. 48

3 नागार्जुन, ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या ! पृ. 45

4 नागार्जुन, हज़ार–हज़ार बाँहों वाली, पृ. 101–102

5 नागार्जुन, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. 83

6 वही, पृ. 38

7 नागार्जुन, ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या ! पृ. 42–43

8 वही, पृ. 39

9 मैनेजर पाण्डेय, मेरे साक्षात्कार, पृ. 34

10 नागार्जुन, भूल जाओ पुराने सपने, पृ. 67–70

11 (सं.) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, चिंतामणि : द्वितीय भाग, पृ. 25

12 नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. 37

13 नागार्जुन, युगधारा, पृ. 54

14 नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. 107

15 नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. 85

16 नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. 25

17 नागार्जुन, ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या ! पृ. 57

18 नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. 20

19 (सं.) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, चिंतामणि : द्वितीय भाग, पृ. 26

20 नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. 34

21 नागार्जुन, भूल जाओ पुराने सपने, पृ. 57

22 नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. 28

23 वही, पृ. 33

24 वही, पृ. 36

25 (सं.) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, चिंतामणि : द्वितीय भाग, पृ. 21

26 नागार्जुन, भूल जाओ पुराने सपने, पृ. 58

27 नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. 24

28 (सं.) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, चिंतामणि : द्वितीय भाग, पृ. 6

29 नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. 35

30 वही, पृ. 41

31 नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहों वाली, पृ. 99–100

32 नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. 37

33 वही, पृ. 37

34 नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. 23

35 नागार्जुन, हज़ार हज़ार बाँहों वाली, पृ. 109

36 नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. 32

37 नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. 18

38 वही, पृ. 28

39 नागार्जुन, ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या ! पृ. 36

40 नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. 19

41 वही, पृ. 38–39

42 नागार्जुन, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. 81

43 नागार्जुन, ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या ! पृ. 34

44 वही, पृ. 20

45 नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. 98–103

46 नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. 40–41

47 नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. 86

48 नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. 12

49 नागार्जुन, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. 30

50 वही, पृ. 89

51 मैनेजर पाण्डेय, मेरे साक्षात्कार, पृ. 30–48

52 नागार्जुन, भूल जाओ पुराने सपने, पृ. 65

53 नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ. 22

54 मैनेजर पाण्डेय, मेरे साक्षात्कार, पृ. 47

55 नागार्जुन, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. 17

56 वही, पृ. 18

57 नागार्जुन, भूल जाओ पुराने सपने, पृ. 56

58 नागार्जुन, अपने खेत में, पृ. 47

59 (सं.) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, चिंतामणि : द्वितीय भाग, पृ. 29–30

60 नागार्जुन, 'आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने' का फ्लैप।

.....

अध्याय–3

नागार्जुन के प्रकृति–चित्रण का वैशिष्ट्य

(क) ग्रामीण जीवन और प्रकृति

(ख) जीवनानुभव और प्रकृति

(ग) प्रकृति वर्णन में नवीनता

(घ) नागार्जुन और उनके समकालीन कवि : प्रकृति–चित्रण के वैशिष्ट्य के संदर्भ में

नागार्जुन की राजनीतिक और व्यंग्य संबंधी कविताओं की इतनी अधिक चर्चा हुई है कि उनके काव्य के अन्य पक्ष दब गए हैं। इन पक्षों की चर्चा भी बहुत कम होती है, होती भी है तो 'बादल को घिरते देखा है' के आगे नहीं। वास्तव में प्रगतिशील कवियों में ही नहीं बल्कि पूरी आधुनिक हिन्दी कविता में नागार्जुन जैसी प्रकृति की उत्कृष्ट कविताएँ लिखने वाले बहुत कम हुए हैं। नागार्जुन की कविताएँ विविधधर्मी हैं। उनमें राजनीति और व्यंग्य के साथ साथ युग और परिवेश पूरी जीवंतता के साथ चित्रित है। प्रगतिवादी काव्यध ाारा में नागार्जुन एक ऐसे कवि के रूप में विख्यात हैं जो बिना लाग–लपेट या भाषा और शिल्प की कुहेलिका बनाए अपनी बात कहने में सिद्धहस्त हैं। नागार्जुन की कविताओं में प्रकृति की जबर्दस्त भूमिका है। बिडंबना यह है कि अब तक समग्रता के साथ नागार्जुन के इस रूप पर चर्चा ही नहीं हुई है।

नागार्जुन की प्रकृति संबंधी कविताएँ जनोन्मुख हैं। उनकी मशहूर कविता है –

"बहुत दिनों के बाद
अबकी मैंने जी भर देखी
पकी सुनहली फसलों की मुस्कान
और
बहुत दिनों के बाद
अबकी मैं जी भर छू पाया
अपनी गँवई पगडंडी की चंदनवर्णी धूल।"

लहलहाती फसलें कवि को मुस्कराती लगती है। नागार्जुन की प्रकृति–चेतना का एक अंश ग्रामीण–जीवन से भी जुड़ा है। ग्राम्य प्रकृति के अनेक पक्ष उनकी कविताओं में बार–बार आते हैं।

(क) ग्रामीण जीवन और प्रकृति

नागार्जुन की प्रकृति संबंधी कविताओं में ग्रामीण जीवन और वहाँ की प्रकृति बहुलता से आती है। ग्रामीण जीवन और प्रकृति के चित्रण में इन्हें विशेष दक्षता हासिल है। नागार्जुन की संवेदना के बुनावट में ग्राम्य तत्वों की अहम भूमिका है। इसीलिए इन रूपों से संबंधित कविताओं में जीवंतता है, ताजगी है। ग्रामीण जीवन और प्रकृति से जुड़े किसी भी कवि को वहाँ की स्थितियों एवं अनुभूतियों के मर्म को जानने के लिए अतिरित प्रयास नहीं करना पड़ता। कवि की संवेदनाओं का साँचा उसके उस परिवेश से ही बनता है जहाँ वह रहता है, उठता–बैठता है, जिस भाषा में वह सपने देखता है, गीत गाता है। नागार्जुन की धरती मिथिला की ही धरती नहीं है पूरे भारतीय उपमहाद्वीप की धरती है और यहीं के तत्वों ने उनके संवेदनात्मक सांचे को निर्मित किया है। जब हम उनकी कविताओं की बारीकियों में जाते हैं तो पाते हैं कि कवि यहाँ की माटी, चिड़िया–चुरुँग, कीकर–बबूल, पगडंडी आदि जैसे अनछुए और तिरस्कृत चीजों को अपनी संवेदना के साँचे में ढालता है। प्रो. मैनेजर पाण्डेय ने नागार्जुन के संदर्भ मे लिखा है – "गंभीरता काव्यानुभूति और संवेदनात्मक उद्देश्य से जुड़ी हुई होती है – केवल कविता के विषय और रूपविधान से नहीं।"[1]

नागार्जुन आम जन–जीवन के सुख–दुख में बराबर के भागीदार हैं। वे उनके मानस में चुपके से पैठकर उनकी तरफ़दारी करते हैं, उसी के हो जाते हैं।

प्रकृति वर्णन के जरिए ग्रामीण जन को नागार्जुन सावधान भी करते हैं कि दुनिया में विद्या और धन दोनों का बराबर महत्व है। भोले भाले ग्रामीण जन अकसर विद्या को धन से श्रेष्ठ समझते हैं। यहाँ उन्हीं के बीच प्रचलित सरस्वती पूजा का अवसर है और कविता है 'वसंत की अगवानी'। प्रकृति पर हर तरफ वसंत का उल्लास छाया हुआ है, दूर

कहीं अमराई में कोयल कूकती है, वृद्ध वनस्पतियों की ठूँठों में भी हलचल होती है, अलसी का नीला फूल खिलता है, पिचके गालों पर भी कुमकुम न्योछावर हो जाता है। रंगों के इस खुशनुमा माहौल में संसार वसंत की अगवानी करने आ निकलता है तो ठौर–ठौर पर माँ सरस्वती दिखाई देती हैं। वे प्रज्ञा की देवी हैं। वे अपने अभिवादन में झुके सभी से कहती हैं –

"... बेटे, लक्ष्मी का अवमान न करना
जैसी मैं हूँ, वैसी वह भी माँ है तेरी
धूर्तों ने झगड़े की बातें फैलायी हैं
हम दोनों ही मिल–जुलकर संसार चलातीं
बुद्धि और वैभव दोनों यदि साथ रहेंगे
जनजीवन का यान तभी आगे निकलेगा।"[2]

प्रज्ञा की देवी अपनी प्रिय संतानों को यह ज्ञान देती है कि बुद्धि और वैभव का अलगाव मिटाकर, दोनों को जोड़कर ही जनजीवन की प्रगति संभव है। अजय तिवारी ने नागार्जुन के बारे में ठीक लिखा है कि – "नागार्जुन के काव्य विवेक का क्रांतिकारी पहलू यह है कि वे प्रेम और देश–प्रेम को आजकल के कुछ 'क्रांतिकारियों' की तरह केला खाकर सड़क पर फेंक दिया गया छिलका नहीं मानते। अपने देश और जनपद की प्रकृति से उनका प्रेम उनके पारिवारिक प्रेम और देश–प्रेम को एक समग्र रागात्मकता में बाँधने वाला अंतःसूत्र है। वे जहाँ रहते हैं वहाँ के एक–एक पेड़–पौधे को जानते–पहचानते हैं :

"नये–नये हरे–हरे पात ...
प्रकृति ने ढँक लिए अपने सब गात
पोर पोर डाल–डाल
पेट–पीठ और दायरा विशाल
ऋतुपति ने कर लिए खूब आत्मसात ... "[3]

कवि ने, साधारण से साधारण स्थितियों का चित्रण जिस मनोभाव से किया है, वह असाधारण बन गया है। धान के मृदु–हरित नवांकुर कवि मन को बाँध लेते हैं। घटायें उमड़–घुमड़ कर काली कजरारी होने लगती हैं तब 'जय हो, जय हो, कृषक बधू की आँखों के उद्‌भास' बरबस ही फूट पड़ता है। बाँदा का अंचल जोकि उत्तर–प्रदेश का पिछड़ा इलाका माना जाता है नागार्जुन को गन्धर्व नगरी लगती है। यह ऊबड़–खाबड़ ध रती उनके लिए स्वर्ग से कमतर नहीं है। हरे भरे जनपदों को देखकर स्वर्ग से इनकी तुलना जायज ही है। ग्रामीण जीवन में सुबह सर्वाधिक सुखद हुआ करती है। नागार्जुन सूर्योदय के समय बहुत दिनों के बाद घूमने निकले हैं, तो ओस की मोती जैसी बूँदों से लदी धान की हरी–भरी फसल को देखकर अपनी कविता 'पछाड़ दिया मेरे आस्तिक ने' में कहते हैं –

"अगहनी धान की दुद्धी मंजरिया
पाकर परस प्रभाती किरणों का
मुखर हो उठेगा इसका रूपाभिराम।"

अगहनी धान की बालियाँ जो अभी रसों से पूर्ण हैं प्रभात की किरणों में निखर उठी हैं। कवि, उस नदी के किनारे भैंसों के खुर के निशान, शीशम के झुरमुट, पकड़ी की फुनगी भी खोज लेता है। धान की मंजरियों में कवि खूब रमता है। चारों ओर गाँवों के खेतों की हरियाली देख कवि को ऐसा लगता है मानो पूरी धरती पर हरी चादर किसी ने बिछा दी है। नागार्जुन गंगा–यमुना के मैदानी क्षेत्रों को देखकर अपनी कविता 'गंगा यमुना हो रही एक' में लिखते हैं –

"चन्दन के जंगल देखो, देखो सरके खेत
ककड़ी खरबूजों वाली देखो उपजाऊ रेत
गेहूँ की हरियाली में डूबे सौ–सौ मैदान
झूम रहे हैं कोसों फैले पके सुनहले धान।"

नागार्जुन की दृष्टि गाँव की प्रकृति की सरल एवं सादगी भरी सुन्दरता की ओर प्रायः उठती है। लोक जीवन की गहराइयों में प्रवेश करके कविताएँ अपना आधारभूमि बनाती हैं। मिथिला में जी भर गन्ना चूसना, मौलसिरी के ताजे–टटके फूलों की गंध लेना आदि इसी ग्रामीण–जीवन से लगाव का परिचायक है। नागार्जुन जब कहते हैं – 'अब की मैं जी भर छू पाया अपनी गँवई पगडंडी की चंदनवर्णी धूल' तो कवि–हृदय बड़ा संतोष अनुभव करता है। आम, जामुन, कटहल, शरीफा, कदली फल, बाग, बगीचा, पोखर, तालाब, नदी–तट, पगडंडी, रास्ते, खेत, पेड़–पौधे, घास, गाँव की अन्य–अन्य चीजें नागार्जुन की कविताओं में बिखरी पड़ी हैं। गाँव के गेहूँ, धान की लहलहाती फसलें नागार्जुन के मन को खींचती हैं और वह उन दृश्यों की शमां बाँध देते हैं। मिथिला के भू–भाग से कवि को विशेष लगाव है। वहाँ की लीचियाँ, आम कवि को प्रिय है। मिथिला भूमि के किसानों की धड़कन से जुड़ी हुई हर वस्तु कवि की संवेदनाओं में समा जाती हैं और कवि–दृष्टि में उनका जो मनोहारी रूप सामने आता है, वह देखने लायक होता है। कवि को कमल, कुमुदिनी और तालमखान के साथ ही शस्य श्यामल जनपदों की भी याद आती है। जेल के जीवन में जब 'सिके हुए दो भुट्टे' सामने आते हैं तो तबियत खिल उठती है। दुधिया दानों का ताजा स्वाद लेकर मन खुशियों से भर जाता है। माधवन आनंद शंकर जब बिहार से विदा होकर अपने प्रांत जाते हैं तब नागार्जुन के साथ बिहार की प्रकृति भी उन्हें विदाई देती है। इसका वर्णन करते हुए नागार्जुन लिखते हैं –

"धन्य है बड़भागी बिहार
वो देखो, वो देखो
झुक गए हैं कैसे
नंग–धडंग खजूर
लम्बे लम्बे ताड़
मगन हैं लेकिन महुआ और नीम।"[4]

'वो देखो' ! जब कवि कहता है तो ऐसा प्रीतिकर प्रतीत होता है जैसे हमारे बीच खड़ा होकर कोई सामने कुछ दिखा रहा हो। इसी तरह कोशल जनपद भी धन्य हो उठा है, जहाँ सरयू–जल से सारी समृद्धियों का सींचन हो रहा है, जहाँ की भूमि उर्वर है, सुर, नर, मुनि को भी जो ललाम है, उसकी मिट्टी का सौन्दर्य कवि–मन में समाया है। बाँदा का वर्णन जब नागार्जुन करते हैं तो रस की धारा सारे तटबन्धों को तोड़कर सभी ओर बहने लगती है –

"मगन है सीसम, मगन अमलतास
तृण लता – गुल्म तक।
बाहर भीतर के वे आँगन
फले पपीतों की वह बगिया
गोल बाँधकर सबका वह 'दुखमोचन' सुनना"

ग्राम्य प्रकृति का ऐसा सजीव चित्रण वही कवि कर सकता है जिसने खुद बगिया के निर्माण में कभी पसीना बहाया हो। नागार्जुन पहाड़ी गाँवों के सीढ़ीनुमा खोतों से वर्षा के बाद उठने वाली सोंधी गंध सूँघते हैं क्योंकि सारी रात बादल बरसते रहे और ज्यामितिक आकृतियों वाले भू–खंडों को भीगोते रहे। 'तना है वितान' कविता में कवि सबकी कमर कसवाकर खेतों में ले जाना चाहता है, क्योंकि सारी ऋतुओं में जो महान् जीवनदायिनी शक्ति है वह आज रिमझिम–रिमझिम कर रही है –

"सुन रे अभागे ! फुहारों की रिम–झिम गान
सबके जी जुड़ा गये
मिला है जीवनदान
... पंक तिलक है यह त्यौहार
रोप रहे होंगे कोटि–कोटि जन–मगन–मनधान।"

किसानों के लिए वर्षा का आगमन सबसे खुशी की बात होती है। उस समय प्रसन्न मन से करोड़ों जन धरती के शृंगार में जुट जाते हैं। बादलों की गड़गड़ाहट पर कवि का मन नाच उठता है वह झूमकर धिन–धन धा, धमक–धमक' कहता है, स्नेही व्योम को माँ की ममता कहता है, जो भुरभुरी मिट्टी को भिंगोकर अपनी सोंधी सुवास से बूढ़े हथेलियों में भी जीवन का एहसास भर देने वाला है। बादल से आच्छादित व्योग के बारे में, बरसात के लिए ऐसी उक्ति किसी गाँव और वहाँ के सुखदुख से गहरे जुड़े कवि की ही हो सकती है। गाँव की एक–एक चीज, एक–एक छवि नागार्जुन के हृदय में रची बसी है, यह उनकी कविताओं से स्पष्ट हो जाता है। अंततः कहा जा सकता है कि गाँव का अनुभव, विशेषकर किसानों की संवेदना के अनुरूप नागार्जुन ने वहाँ की प्रकृति को वह रूप दिया है कि धरती स्वर्ग हो उठी है। धरती की इस सौन्दर्य–निर्मिति में जिन प्राकृतिक रूपों – बादल, वर्षा, ऋतुएँ, वृक्ष, तलाएँ, पक्षी, चाँदनी, ओस आदि का योगदान है, उनके प्रति नागार्जुन के मन में कृतज्ञता का अपार भाव है। निस्संदेह, नागार्जुन की प्रकृति चेतना ग्राम्य जीवन से जुड़ी हुई है लेकिन यहीं तक सीमित नहीं है।

(ख) जीवनानुभव और प्रकृति

हिन्दी साहित्य के लंबे कालखंड में प्रकृति के विभिन्न सुन्दर–असुन्दर रूपों का वर्णन होता रहा है। जानबूझकर प्रकृति का वर्णन करने की मंशा से प्रकृति–चित्रण किया जाता रहा। परंपराबद्ध परिपाटी और प्रकृति–चित्रण का एक फॉर्मूला कवि के पास होता था। वह उसी साँचे में कविता को ढाल देता था। ऐसी कविताओं का जीवन–जगत के विविध क्षेत्रों से कितना तालमेल बन पा रहा है या नहीं बन पा रहा है – यह उसकी चिंता का विषय नहीं था। प्रकृति के विविध रूपों को देखना और उनका वर्णन कर देना कवि और कविता का सहज व्यापार रहा है। प्रकृति के ऐसे चित्रण में कवि को विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता। वह केवल लकीर का फकीर बना रहता है। हर मनुष्य का जीवनानुभव एकरेखीय नहीं होता उसमें विविधता होती है। जीवन के उतार–चढ़ाव और सुख–दुख में हमारे भाव बदलते रहते हैं। भावों के परिवर्तन के साथ जीवन जगत को देखने का हमारा नज़रिया भी बदलता रहता है। ठीक, इसी प्रकार प्रकृति के विविध रूपों को कवि अपनी मनोदशा के अनुसार ग्रहण करता है और चित्रित करता है। प्रकृति का एक ही रूप कभी उसे सुख देता है और कभी दुख।

नागार्जुन उक्त मान्यता से भिन्न भाव–भूमि पर संचरण करने वाले कवि हैं। यहाँ एक तथ्य विशेष रूप से ध्यातव्य है कि नागार्जुन के जीवन का अधिकांश हिस्सा यायावरी में बीता था। यायावरी भी ऐसी नहीं जहाँ यात्रा के लिए आधुनिक द्रुतगामी साधनों का इस्तेमाल किया गया हो। पैदल दूर दूर तक की यात्राओं के क्रम में नागार्जुन ने प्रकृति को न केवल बहुत नजदीक से देखा, बल्कि उसे भीतर तक महसूस किया था, अपने जीवनानुभव को समृद्ध किया था। शायद यही कारण है कि प्रकृति–चित्रण के क्रम में प्रकृति के अनेक रूप उनके जीवनानुभवों से जुड़कर ही काव्य–क्षेत्र में प्रवेश पाते हैं।

मनुष्य का प्रकृति से रिश्ता बहुत पुराना है। यह रिश्ता संघर्षपरक भी है और पोषक भी। कई बार हमारे जीवन के अनुभव प्रकृति से जुड़े हुए होते हैं। सामान्यता हमारा ध्यान प्रकृति से रिश्ते की ओर कम जाता है। नागार्जुन सभी प्रकार के आवरण उतारकर इस रिश्ते को महसूस करते हैं, उसे कविता में उजागर करते हैं। कहने का आशय है कि नागार्जुन की प्रकृति संबंधी अनेक कविताएँ विभिन्न जीवनानुभवों से संपृक्त हैं। नागार्जुन विपरीत परिस्थितियों में प्रकृति से जीवनी शक्ति ग्रहण करते हैं। प्रकृति यहाँ प्रेरणास्पद रूप में आती है। जेल में बंद नागार्जुन को रजनीगंधा से शक्ति मिलती है –

"तुम खिलो रात की रानी !
हो म्लान भले यह जीवन और जवानी
तुम खिला रात की रानी !
प्रहरी–परिवेष्टित इस बंदीशाला में
मैं सड़ूँ सही, पर ताजी रहे कहानी !
तुम खिलो रात की रानी !
यह प्रहरी के बूटों की कर्कश टापें
रह–रहकर बहुधा नींद तोड़ जाती हैं
आँखें खुलतीं तो बस झुँझला उठता हूँ
ये हृदयहीन ! ये नर–पिशाच ! ये कुत्ते !
इतने में अनुपम सुवास से सुरभित
शीतल समीर का हल्का झोंका आता
सारे अभाव–अभियोग भूल जाता हूँ
यह आकुल मन इतना प्रमुदित हो जाता
जय हो जय हो कल्याणी !"[5]

प्रकृति और मनुष्य के संजोयन को दिखाने वाली रजनीगंधा जैसी अन्य कई कविताएँ भी हैं। जैसे सिंधु नद, मन करता है, धरती, बहुत दिनों के बाद, अकाल और उसके बाद, झुक

आए कजरारे मेघ, हिम–कुसुमों का चंचरीक, धूप में खिले पात आदि। नागार्जुन का आमजन के जीवन का अवलोकन जितना प्रामाणिक है उतना ही प्रकृति संबंधी अवलोकन भी। उनकी भाषा की सर्जनात्मकता, लाक्षणिकता का नमूना है यह पंक्ति –

'कौए ने खुजलाई पाँखें बहुत दिनों के बाद'

इस पंक्ति में कौए का संघर्ष भी विद्यमान है। नागार्जुन अपनी कविता में प्रकृति और उसके जीव–जन्तुओं के बीच चल रहे संघर्ष से पाठक का साक्षात्कार करवाते हैं। इसी संघर्ष के साक्षात् परिदृश्यों के माध्यम से नागार्जुन प्रकृति के विविध क्रिया–व्यापारों में निहित सौन्दर्य की प्रतीति भी करा देते हैं।

नागार्जुन गंवई परिवेश के प्रकृति लोक के अलावा महाजनी विद्रूपता, संस्कृति के उल्लास, आशावादी दृश्यों का विधान भी करते हैं क्योंकि उनका अटूट विश्वास जनता में है। नागार्जुन कैसे अपने जीवनानुभव को प्रकृतिद्वारा अभिव्यक्त करते हैं, इसका उदाहरण देखिए। नागार्जुन प्रकृति से प्रेम करते हैं उसे बचाना चाहते हैं। प्रकृति का नाश उन्हें अप्रिय है। उनकी कविता में भी यह बात देखी जा सकती है। वर्षा के बादलों का स्वागत मनुष्य, पेड़–पौधे, और जीव–जन्तु सभी अपने–अपने तरीके से करते हैं। परंतु हेमंती बादलों से अगर सभी सहमें रहते हैं तो कवल इसीलिए कि ये बादल संहारक होते हैं, ओले बरसाने वाले और फसलों का नाश करने वाले होते हैं। 'हेमंती बादल हैं' कविता में नागार्जुन इसी भाव की व्यंजना करते हैं। 'वह फिर से जी उठी है' नामक एक 'लंबी कविता में', नागार्जुन एक छोटी पहाड़ी नदी के माध्यम से प्रकृति के प्रति अपने पूरे अनुराग को व्यक्त करते हैं। नागार्जुन के यहाँ प्रकृति मनुष्य–जीवन के विकास में सक्रिय सहयोगी की भूमिका निभाती है। नागार्जुन फसल को श्रम और धरती, दोनों की उपलब्धि मानते हैं –

"फसल क्या है ?
और तो कुछ नहीं है वह

नदियों के पानी का जादू है वह
हाथों के स्पर्श की महिमा है
भूरी–काली–संदली मिट्टी का गुण धर्म है
रूपांतर है सूरज की किरणों का
सिमटा हुआ संकोच है हवा की थिरकन का।"[6]

नागार्जुन प्रायः हर गर्मी में जहरीखाल जाते थे। इसीलिए पहाड़ी नदी, बादल उनकी कविता के प्रेरणास्रोत हुए हैं। पहाड़ी बादल और वर्षा के दृश्य उन्हें नई ऊर्जा प्रदान करते हैं। दूसरी तरफ वे अन्याय और असमानता से परेशान रहते हैं। जब वे देखते हैं कि सत्ता अत्याचार कर रही है तो ऐसे में प्रतिहिंसा ही एकमात्र रास्ता नज़र आता है। इसीलिए वे नक्सलवादी आंदोलन के हमदर्द हैं। उनकी चेतना यथास्थितिवादी नहीं है। उनकी कविता में, झारखंड से विद्रोह की आवाज सुनाई देती है, क्योंकि सबसे अधिक मुसीबतें वनवासियों को उठानी पड़ी हैं। उनकी धरती छीनी गई, जंगल और पहाड़ियाँ छीनी गयीं, आज उन्हें अधिकार दिलाने के लिए कवि उनका पक्षधर हो गया है –

"हमारी धरती हमें वापस दे दो
हमें झंडे वाली आजादी नहीं चाहिए।"[7]

'भर रहा है चमक', मैं मेघवाहन हूँ, सोनिया समुन्दर, शिशिर की निशा, सजीले प्रिय देवदार, आदि कविताओं से स्पष्ट हो जाता है कि नागार्जुन की कई कविताओं में प्रकृति और उनके जीवनानुभव घुलमिल कर एक हो गए हैं। नागार्जुन की कविता है – 'बदलियाँ हैं' :

"बड़ी भोली बदलियाँ हैं !
बड़ी सादी बदलियाँ हैं !
अजी, इनको ऽऽ

– खूँटियों पर टाँग लो !
बरस पड़ना कहीं पर भी
भिंगो देना किसी को भी
– दुआ इनसे माँग लो !"[8]

बादलों का इस रूप में वर्णन कवि ने अपनी अनुभूति के साथ जोड़कर किया है। प्रकृति के साथ जीवन के सुखदुख भी आए हैं। नागार्जुन प्रकृति को जहाँ कष्टदायी पाते हैं वहाँ वे कष्ट को व्यक्त करने में हिचकिचाते नहीं। शायद इसीलिए शिशिर को हजार–हजार बाहों वाली विष–कन्या कहते हैं। प्रकृति और मानव जीवन के बारीक अनुभव से ही ऐसी कविताएँ संभव हो सकती हैं। नागार्जुन प्रकृति के खिलाफ संघर्षरत आदिवासियों के जीवन को पहचानते हैं। वे गर्मी और अनावृष्टि से होने वाली यातना को जानते हैं तभी बरसात के आगमन पर ग्रीष्म को विदा करते हैं। वे वलाका, गौरैया, मेढक, मधुमक्खी के साथ–साथ गरीबों के आश्रय को छेड़ने वालों को खबरदार करते हैं। उनकी यह चेतना कई कविताओं में प्रकृति–वर्णन के साथ–साथ झलक जाती है। किसी भी कवि की रचना में उसके जीवनानुभव मुख्य तत्व होते हैं। इस जीवनानुभव में उसकी विचारधारा, उसकी चिंता, आशा और आकांक्षा सभी कुछ व्याप्त रहता है।

(ग) प्रकृति वर्णन में नवीनता

नागार्जुन की विशेषता है कि वे बिना ढिंढोरा पीटे अपना काम करते हैं। बिना किसी घोषणा के उन्होंने कविता में अनेक प्रयोग किए हैं। विद्वानों ने इसे यथास्थान रेखांकित भी किया है। वे पारंपरिक सादृश्य–विधानों एवं पुराने उपमानों को छोड़कर युग के अनुरूप नये उपमानों को गढ़ते हैं। इस प्रक्रिया में वे अलंकृत बिम्बों की योजना करके बात को सहज एवं हृदयग्राह्य बना देते हैं –

"अरुणोदय से डरने वाले जो गति होती है उलूक की
वही हाल है आज हमारे नेताओं का।"[9]

नागार्जुन के काव्य की पड़ताल करते हुए डॉ. भगवान तिवारी लिखते हैं कि – "मनुष्य प्राकृतिक तत्वों पर अपने विस्मय, क्रोध, प्रणति, भय, राग–द्वेष आदि भावों को प्रत्यारोपित करता आ रहा है। इतना ही नहीं, वह अपने जीवन की प्रमुख घटनाओं का मानवीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से प्रकृति पर आरोपित करता है। इस प्रकार प्रकृति की उत्पत्ति, विकास, विनाश, ऋतु परिवर्तन आदि अवस्थाएँ मानव जीवन में घटित व्यापारों को निरूपित करती हैं। वास्तव में मनुष्य का जन्म, यौवन, प्रणय व्यापार, उत्पत्ति, उद्यम, मौत आदि घटनाएँ प्रकृति परिवर्तन के समानान्तर चलती हैं। महाकवि कालिदास ने यक्ष और यक्षिणी के प्रणय की जो परिकल्पना की है, वह वास्तव में प्रकृति का मानवीकरण है और प्राकृतिक मिथक है। नागार्जुन ने कालिदास के इस प्राकृतिक मिथक को व्यंग्यात्मक रूप में बिम्बित किया है –

"वर्षा ऋतु की स्निग्ध भूमिका
प्रथम दिवस आषाढ़ मास का
देख गगन में श्याम घन घटा
विधुर यक्ष का मन जब उचटा

खड़े–खड़े तब हाथ जोड़कर
चित्रकूट के सुभग शिखर
उस बेचारे ने भेजा था
जिनके ही द्वारा संदेशा
उन पुष्करावर्त मेघों का
साथी बनकर उड़ने वाले
कालिदास, सच–सच बतलाना।"[10]

प्रकृति–चित्रण में नवीनता लाने में कहीं–कहीं एक विशेषण ही काफी साबित हुआ है। नागार्जुन विशेषणों के प्रयोग में सिद्धहस्त हैं। चाहे राजनीति हो, समाज की बात या प्रकृति, विशेषणों के प्रयोग से वे प्रभावसाम्य द्वारा गहरी व्यंजना करते हैं। एक उदाहरण –

"कड़ी धूप, फिर बूँदाबाँदी
फिर शशि का बरसाना चाँदी
चितकबरी चाँदनी नीम की छतनारी डाली से
छन–छन कर आती थी।"[11]

प्रकृति–चित्रण में चाँदनी का विशेष महत्व रहा है। प्रायः कवि इससे अभिभूत रहे हैं इसको धरती पर शीतलता विखेरने वाला मानते रहे हैं। नागार्जुन को चाँदनी आकृष्ट तो करती है परंतु उनको उसमें आकाश का वैभव नहीं दिखता। उन्होंने सामान्य लोकजीवन से उसके रूपरंग को रेखांकित किया –

"पीपल के पत्तों पर फिसल रही चाँदनी
नालियों के भीगे हुए पेट पर, पास ही
जम रही, घुल रही, पिघल रही चाँदनी
पिछवाड़े बोतल के टुकड़ों पर –
चमक रही, दमक रही, मचल रही चाँदनी
दूर उधर, बुर्जी पर उछल रही चाँदनी।"[12]

बोतल के टूटे टुकड़ों पर शायद ही कोई ध्यान देगा लेकिन यह सत्य है कि भारत के गाँवों में आम किसान के घर के पिछवाड़े यह पड़ा होता है, जिसे नागार्जुन जैसा कवि ही देख सकता है। नागार्जुन ने अपनी कविताओं में कुछ प्रतीक गढ़े भी हैं। ये प्रतीक उस अर्थ को वहन करने में सक्षम हैं जो कवि को वांछनीय है। इस सिलसिले में उल्लेखनीय है कि नागार्जुन ने प्रकृति के उपादानों का प्रतीकवत प्रयोग किया है। जैसे दूब को शोषित तथा निर्धन व्यक्ति का प्रतीक बनाया है। शोषक वर्ग शोषितों की इच्छाओं व सम्मान को 'दूब' की तरह कुचलता रहता है, पैरों तले रौंदता रहता है। नागार्जुन ने 'दूब' को निर्धन वर्ग की हीनता एवं सहनशीलता का भी प्रतीक माना है। उदाहरण के लिए उनकी 'रवि ठाकुर' नामक कविता की पंक्ति है –

"कवि हूँ ! रूपक हूँ दबी हुई दूब का
हरा हुआ नहीं कि चरने को दौड़ते।"

अन्यत्र नागार्जुन प्रकृति को मानवता के प्रतीक रूप में चिह्नित करते हैं –

"मृत्यु नहीं, जीवन का देते आये हैं संदेश
झूमते लहराते धान के पौधे
नाश नहीं निर्माण के प्रतीक हैं साक्षात्
दिग्दिगंत फैले हरित–शाद्वल क्षेत्र
जिन्हें देख–देख अघाते नहीं नेत्र।"[13]

यहाँ कवि प्रकृति के माध्यम से निर्माण और समानता को स्थापित करना चाहता है। नागार्जुन अपनी कविता 'पीपल के पीले पत्ते' में इन पीले पत्तों को ह्रासोन्मुखी रीति–रिवाजों तथा प्राचीन अर्थ–व्यवस्था का प्रतीक मानकर, लाल पत्तों यानी परिवर्तन, अर्थात नई व्यवस्था की कामना करते हैं –

"खड़–खड़–खड़ करने वाले

ओ पीपल के पीले पत्ते !
अब न तुम्हारा रहा ज़माना
शकल पुरानी ढंग पुरानी
अब न तुम्हारा रहा जमाना
आज गिरो कल गिरो कि परसों
तुमको तो अब गिरना ही है
बदल गई ऋतु राह देखती लाल–लाल पत्तों की दुनिया
हरे–हरे कुछ भूरे–भूरे टूसों से लद रहीं टहनियाँ !
इसका स्वागत करते जाओ।"[14]

चमगादड़ के रात्रिचर होने के अनोखेपन और कुत्ते का स्वामिभक्त होने की प्रवृत्ति को नागार्जुन ने अलग अंदाज दिया है। प्रकृति के इन दो जीवों के प्रकृत व्यवहार को कवि ने आज के सन्दर्भ में व्यंग्य के रूप में प्रयुक्त किया है –

"चमगादड़ की वृत्ति न लेकिन मैंने सीखी
दृढ़ निष्ठा अपना न सका मैं श्वान सरीखी
वर्ना मैं भी तो अब तक लक्षेश्वर होता
मन माफ़िक खाता–पीता, सुखपूर्वक सोता ... ।"[15]

'चमगादड़' और 'श्वान' आज की अंधी व्यवस्था में चाटुकार कवियों, लेखकों के प्रतीक हैं। इस प्रतीकों के माध्यम से कवि ने चापलूस सुविधा भोगी अवसरवादी साहित्यकारों पर पैना व्यंग्य किया है, जो हमें परसाई की याद दिलाता है। नागार्जुन की कविताओं में बिम्बों के स्तर पर भी नवीनता लक्षित की जा सकती है। कहीं–कहीं पर कवि ने बिम्बों की उत्कृष्ट रचना से बड़ी–बड़ी बात कह दी है। जैसे 'अकाल और उसके बाद' में। 'बहुत दिनों के बाद' नामक कविता में बिम्बों द्वारा रूप, रस, गंध, स्पर्श सबका एहसास करा देता है। नागार्जुन का प्रकृति से लिया हुआ नाद तत्वों की योजना वाला बिम्ब देखने योग्य है –

"छमका रही है पावस रानी
बूँद–बूँदियों की अपनी पायल
और आज
चालू हो गई है
झींगुरों की शहनाई अविराम
और आज
जोरों से कूक पड़े
नाचते–थिरकते मोर।"[16]

यहाँ बूँदों को पायल, झींगुरों को शहनाई, मोर की कूक आदि में नाद बिम्ब सृजित हुआ है। इस तरह कवि ने वर्षाकालीन परिवेश और प्रकृति को सहज ढंग से प्रस्तुत कर पाठक के मन को छू लिया है। 'बहुत दिनों के बाद' नामक मशहूर कविता में कवि को मौलसिरी के ढेर सारे ताजे फूलों को सूँघकर बिम्ब का स्वरूप घ्राणात्मक प्रकट करता है। नागार्जुन को अपनी मिट्टी से प्यार है। प्रवास के दौरान उन्हें अपनी उस माटी की याद बार–बार आती है जहाँ उनका बचपन बीता है। तरउनी गाँव उनके स्मृति–पटल पर छाया हुआ है। उन्होंने अपने ग्रामीण परिवेश का हू–ब–हू बिम्ब संयोजित किया है। ऐसे बिम्ब विधानों में यथार्थ का चित्रण ही अधिक दिखाई देता है। इन बिम्बों में कवि ने कल्पनाशक्ति का उपयोग बहुत ही कम किया है –

"याद आता है मुझे अपना वह 'तरउनी' ग्राम
याद आती हैं लीजिचाँ, वे आम
याद आते हैं मुझे मिथिला के रुचिर भू–भाग।"[17]

(घ) नागार्जुन और उनके समकालीन कवि : प्रकृति–चित्रण के वैशिष्ट्य के संदर्भ में

नागार्जुन की प्रकृति संबंधी कविताओं का एक वह रूप है, जिसमें प्रकृति की सुन्दर छवियों पर कवि–हृदय उल्लसित–मोहित है। इस प्रकार के कविता चित्रों से कवि की स्वस्थ सौन्दर्य चेतना उद्घाटित होती है। नागार्जुन से मिलती–जुलती प्रकृति पर कविताएँ त्रिलोचन और केदारनाथ अग्रवाल ने भी लिखी हैं। नागार्जुन किसी दृश्य को चित्रित करते समय कई संबद्ध घटनाओं का उल्लेख करते हैं ऐसा ही एक वर्णन त्रिलोचन के यहाँ देखिए –

"आई थीं घटाएँ अभी
नाच कर चली गईं
बिजली की मशाल जल जलकर
बुझ जाती थी
हवा सनसनाती थी
पेड़ों के पत्तों के बीच से
निकलते समय
केवल रिमझिम का संगीत सुन पड़ता था
बूँदों की छनकारें
ओलतियों की टप टप टपकारें
पानी का कल कल करते
बहते ही जाना।"[18]

प्रकृति को अपनी कविताओं का प्रमुख विषय कवि केदारनाथ अग्रवाल ने भी बनाया। अतः नागार्जुन के साथ–साथ उन पर भी विचार करना प्रासंगिक होगा। वैसे तो उनकी शुरू की कविताओं में प्रेम का स्वर प्रधान है, परंतु बाद में उन्होंने प्रकृति पर भी खूब

लिखा है। 'अपूर्वा' की भूमिका में उन्होंने खुद के बारे में लिखा है –

"पहले मेरे संस्कार भाववादी थे। दुनिया अपने अस्तित्व में मायावी लगती थी। वह मोहती थी। मैं मोहाविष्ट होता था। उसी मोह से मेरी मानसिकता बनती थी। मेरा इन्द्रियबोध मुझे उसी ओर ले जाता था। मैं भाववादी कविताएँ लिखता था। काव्य के भाववादी संस्कार मुझे प्रिय लगते थे। प्राचीन काव्य के तौर–तरीके मैं अपनाता था।

... नारी की देहयष्टि का सौन्दर्य अत्यधिक आकृष्ट करता था। प्रकृति का अनूठा सौन्दर्य तब तक मैंने जाना ही नहीं था। मेरी कविता पुराने किताबी संस्कार से बनती थी।"[19]

कवि केदारनाथ अग्रवाल को प्रकृति का साथ मुक्ति का एहसास दिलाता है। जैसे खुली हवा में रहना। उनकी मशहूर कविता है –

"अनोखी हवा हूँ, बड़ी बावली हूँ !
बड़ी मस्तमौला, नहीं फिकर है
बड़ी ही निडर हूँ, जिधर चाहती हूँ
उधर घूमती हूँ, मुसाफिर अजब हूँ !
न घर–बार मेरा, न उद्देश्य मेरा,
न इच्छा किसी की, न आशा किसी की,
न प्रेमी, न दुश्मन,
जिधर चाहती हूँ, उधर घूमती हूँ !
हवा हूँ, हवा मैं बसन्ती हवा हूँ।"[20]

हवा के अलावा धूप पर केदारनाथ अग्रवाल ने कई कविताएँ लिखी हैं। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने अपनी पुस्तक समकालीन हिन्दी कविता में लिखा है –

"... केदारनाथ अग्रवाल की कविता में 'सूर्य', 'धूप', 'किरन' और 'दिन' की विविध छवियाँ अंकित मिलेंगी। प्रकृति–संसार में सबसे अधिक प्रेम उन्हें इन्हीं से है। यह ध्यान देने की बात है कि मुक्तिबोध की कविता में 'अँधेरा' शब्द का बहुत इस्तेमाल हुआ है और केदारनाथ अग्रवाल की कविता में 'धूप' का। यह दोनों कवियो की मनःस्थितियों का फर्क है।"[21]

धूप की कुछ छवियाँ केदारनाथ अग्रवाल की कविता से उद्धृत कर रहा हूँ –

1. "धूप नहीं, यह
बैठा है खरगोश पलंग पर
उजला
रायेंदार, मुलायम –
इसको छू कर
ज्ञान हो गया है जीने का
फिर से मुझको।"[22]

2. "धूप चमकती है चाँदी की साड़ी पहने
मैके में आई बेटी की तरह मगन है
फूली सरसों की छाती से लिपट गई है
जैसे दो हमजोली सखियाँ गले मिली हैं
भैया की बाँहों से छूती भौजाई–सी
लहँगे की लहराती लचती हवा चली है।"[23]

नागार्जुन ने भी धूप पर कई जगह लिखा है। उनकी एक कविता है – नीम की दो टहनियाँ :

"नीम की दो टहनियाँ
झाँकती हैं सीखचों के पार

यह कपूरी धूप
शिशिर की यह दुपहरी, यह प्रकृति का उल्लास
रोम–रोम बुझा लेगा ताजगी की प्यास।"[24]

जाड़े की धूप को कपूरी कहने में एक साथ कई व्यंजनाएँ हैं – धूप का रंग, उसका क्षणिक ठहराव, उसकी सुखद अनुभूति और एक अच्छी खुशबू आदि।

जैसे नागार्जुन को बादल अत्यधिक प्रिय है और मौसम में बरसात, वैसे ही केदारनाथ अग्रवाल को धूप प्रिय है और ऋतुओं में बसंत। वैसे तो धूप, हवा, खेत, मैदान, खलिहान, पोखर, चाँद, चाँदनी, पक्षी, फूल आदि पर दोनों कवियों ने लिखा है। फर्क है तो कहने के ढंग में और कहीं कहीं आत्मीयता का भी है। नागार्जुन प्रकृति के अलग से दर्शक नहीं हैं बल्कि उसी में शामिल हैं, जबकि केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में प्रकृति का अवलोकन है। नागार्जुन का हिया लहलहाते फसलों को देखकर ही 'जुड़ा' जाता है या फिर उनकी मुस्कराहट से गद्‌गद् होता है। जबकि केदारनाथ अग्रवाल के यहाँ फसल को 'घघरिया' पहनना पड़ता है –

1. "आसमान की ओढ़नी ओढ़े
धानी पहने
फसल घँघरिया,
राधा बनकर धरती नाची,
नाचा हँस मुख
कृषक सँवरिया।
माटी थाप हवा की पड़ती
पेड़ों की बज
रही ढुलकिया,
जी भर फाग पखेरू गाते,
ढरकी रस की
राग – गगरिया।"[25]

2. "चोली फटी सरस सरसों की
नीचे गिरा फागुनी लहँगा,
ऊपर उड़ी चुनरिया नीली,
देखो हुई पहाड़ी विवसन
आतपतप्ता।"[26]

कवि केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में प्रकृति सौन्दर्य और नारी सौन्दर्य घुल–मिल कर आता है। वह ठेठ देशी होकर भी कवि का ही रहता है जन का नहीं होता। शायद इसीलिए उनको 'सौन्दर्य का कवि' कहना बेहतर होगा। अपनी सौन्दर्य संवेदना और प्रकृति प्रेम के बारे में खुद अग्रवाल जी ने लिखा कि –

> "मेरी कविताओं में शिल्प का सौन्दर्य मिलेगा। वह सौन्दर्य उसके स्थापत्य के शिल्प का सौन्दर्य है। वह सौन्दर्य अनेक भाव–भंगिमाओं से अपने को व्यक्त करता है। उसकी अभिव्यक्ति अनेकरूपिणी है। जैसे हर सवेरा एक नये सौन्दर्य का सवेरा होता है, वैसे मेरी हर कविता एक नए सौन्दर्य की कविता होती है। मैंने प्रकृति को चित्र के रूप में देखा है। उसके सम्पर्क में मुझे जीने के लिए संघर्ष नहीं करना पड़ा। अतएव प्रकृति का मेरा निरूपण चित्रोपम निरूपण है। उसमें कलाकारिता है। शब्दों का सौन्दर्य है। ध्वनियों की धारा है।"[27]

एक और बड़ा अंतर नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल में यह है कि केदार जी की कविताएँ तुलनात्मक रूप से अधिक आत्मकथ्य युक्त हैं। 'स्व' को उजागर करने की जो चेष्टा उनके यहाँ मिलती है वह नागार्जुन की चेतना से भिन्न है। नागार्जुन के यहाँ 'स्व' एवं 'पर' का भेद ही नहीं रहता। एक पंक्ति में अपनी बात कहते हैं तो ठीक अगली पंक्ति में दुनिया का दुख सामने होता है। 'मैं उगा हूँ हर रोज दिनकर की तरह, मैंने असफलता

से सीख ली और अपनी सुन्दरता सँवारी' जैसा भाव नागार्जुन को नहीं व्यापता।

केदारनाथ अग्रवाल की कविता से एक उदाहरण रख रहा हूँ, जिससे स्पष्ट हो जाएगा कि उनकी प्रकृति प्रेयसी या स्त्री रूप में भी आती है –

"एक बीते के बराबर
यह हरा ठिगना चना,
बाँधे मुरैठा शीश पर
छोटे गुलाबी फूल का,
सजकर खड़ा है।
पास ही मिलकर उगी है
बीच में अलसी हठीली
देह की पतली, कमर की है लचीली,
और सरसों की न पूछो
हो गयी सबसे सयानी
हाथ पीले कर लिये हैं
ब्याह–मण्डप में पधारी।"[28]

कहीं पर नदी कवि को जवान लड़की प्रतीत होती है तो कभी खूबसूरत हवा–वल्लरी कवि की देह – गाँछ से लिपटने लगती है। एक और उदाहरण –

"भूल सकता मैं नहीं
ये कुच – खुले दिन
ओठ से चूमे गये
उजले, धुले दिन
जो तुम्हारे साथ बीते
रस–भरे दिन।"[29]

इन सबके बावजूद केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन दोनों के प्रकृति–चित्रण में कुछ समानता भी है, समानता से अधिक उपयुक्त शब्द होगा 'संबंध–सूल'। प्रकृति से मानव के शाश्वत संबंध की अभिव्यक्ति नागार्जुन ने अपनी कविता 'सिन्धु नद' में की है। इधर केदारनाथ अग्रवाल की पंक्तियाँ हैं –

"हम न रहेंगे
तब भी तो यह खेत रहेंगे;
इन खेतों पर घन घहराते
शेष रहेंगे;
जीवन देते,
प्यास बुझाते
माटी को मद–मस्त बनाते,
श्याम बदरिया के
लहराते केश रहेंगे।"

प्रकृति के प्रति आकर्षण का यह भाव पलायन नहीं है बल्कि शाश्वत के प्रति आकर्षण है। केदारनाथ अग्रवाल ने अपने काव्य संग्रह 'फूल नहीं, रंग बोलते हैं' की भूमिका में लिखा है –

"मेरी कविताओं में मेरा अनुभूत व्यक्तित्व तो है ही। साथ–ही–साथ उसमें युग बोध और यथार्थ बोध भी है। प्रत्येक कविता आत्मान्वेषिणी होते हुए भी यथार्थन्वेषिणी है।"[30]

नागार्जुन को अपने बारे में इतना भी कहने की जरूरत नहीं है। उनकी कविता खुद ही सब कुछ कह देती है। शायद इसीलिए नागार्जुन ने अपने किसी भी काव्य संग्रह की कोई भूमिका ही नहीं लिखी है।

केदारनाथ अग्रवाल की कविता में इसके अलावा बुन्देलखंड का प्रदेश, केन का सौन्दर्य एवं किसान युवक–युवतियों, मेहनतकश मजदूरों का देह–चित्र बार–बार उभरता है। मतलब 'श्रम' को कविता का विषय बनाने में वे आगे हैं। शमशेर बहादुर सिंह के काव्य–जगत में ऐसी कविताओं की कमी है। इसीलिए 'प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल' में रामविलास शर्मा लिखते हैं –

> "केदार भारत की अपराजेय किसान चेतना के कवि है, वह किसान के जीवंत प्राकृतिक परिवेश के कवि भी हैं।"

कुल मिलाकर केदारनाथ अग्रवाल की प्रकृति संबंधी कविताओं में प्रकृति का मानवीकृत रूप और किसान–जीवन से जुड़े प्रकृति रूपों की बहुलता है, प्रधानता है। प्रकृति संबंधित कविताओं में उनका आग्रह रूप–जगत पर अधिक है।

केदारनाथ अग्रवाल के यहाँ प्रकृति सिर्फ प्रकृति के रूप में (स्वतंत्र आलंबन रूप में) बहुत कम मिलती है। पर, नागार्जुन के यहाँ प्रकृति का स्वायत्त–चित्र खूब मिलता है। शमशेर बहादुर सिंह के यहाँ भी ऐसी कविताएँ मिलती हैं। एक स्थान पर शमशेर बहादुर सिंह ने केदारनाथ अग्रवाल को एक ऐसा रोमानी कवि कहा है जो प्रकृति और समाज के आईने में जब कभी सौन्दर्य देखता है वह उसी में मगन हो जाता है जैसे कोई तैराक नदी में डुबकी लगाकर। केदारनाथ अग्रवाल की कविता में भी लोकजीवन और गँवई जीवन का स्पर्श है। यह उनके यथार्थ के अंकन की प्रवृत्ति का परिचायक है। शायद इसीलिए रामविलास जी ने कहा कि – "वे रचते बहुत कम हैं, देखते ज्यादा हैं।"

नागार्जुन की कविता में अपने समय और समाज के यथार्थ के मूल स्रोतों से जुड़ने की आकांक्षा की अभिव्यक्ति हुई है। यथार्थ से जुड़ने की कोशिश जिन कुछ और व्यक्तियों ने की है उनमें एक नाम त्रिलोचन का भी है। त्रिलोचन के बारे में कवि केदारनाथ सिंह

ने लिखा है –

"त्रिलोचन जितने मानव–संघर्ष के कवि हैं, उतने ही प्रकृति की लीला और सौन्दर्य के भी। इसलिए प्रकृति बहुत गहराई तक उनकी कविता में रची–बसी है। प्रकृति के बारे में त्रिलोचन का दृष्टिकोण बहुत कुछ उस ठेठ भारतीय किसान के दृष्टिकोण जैसा है जो कठिन श्रम के बीच भी उगते हुए पौधों की हरियाली को देखकर रोमांचित होता है। निराला की तरह त्रिलोचन ने भी पावस के अनेक चित्र अंकित किए हैं और बादलों के कठोर संगीत को अपनी अनेक कविताओं में पकड़ने की कोशिश की है। परंतु ऐसा करते हुए वे किसी विलक्षण सौन्दर्य–लोक का निर्माण नहीं करते, बल्कि अपनी चेतना के किसी कोने में दबे हुए किसान का मानो आह्वान करते हैं –

"उठ किसान ओ
उठ किसान ओ
बादल घिर आये।"

प्रकृति और जीवन के प्रति यह किसान सुलभ दृष्टि त्रिलोचन की एक ऐसी विशेषता है जो सिर्फ उनकी अलग पहचान ही नहीं बनाती, बल्कि उनकी विश्व–दृष्टि को समझने की कुंजी भी हमें देती है।"[31]

नागार्जुन अपनी कई कविताओं में प्रकृति से बात करते मिलते हैं। ऐसी बातचीत त्रिलोचन के यहाँ भी है। वास्तव में प्रगतिशील कवियों की चेतना काफी कुछ मिलती–जुलती है। जिसके कारण अंतर के बावजूद कथ्यगत समानता अधिक है। त्रिलोचन की कविता है – 'हम साथी' –

"चोंच में दबाए एक तिनका
गौरैया
मेरी खिड़की के खुले हुए
पल्ले पर बैठ गई
और देखने लगी
मुझे और कमरे को।
मैंने उल्लास से कहा
तू आ
घोंसला बना
जहाँ पसंद हो
शरद के सुहावने दिनों से
हम साथी हों।"[32]

वास्तव में रूपगत, भाषागत, शैलीगत विशिष्टताओं और कुछ अनूठेपन को छोड़कर त्रिलोचन, शमशेर, केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन की प्रकृति संबंधी कई कविताएँ एक ही कवि की विभिन्न रचनाएँ जान पड़ती हैं। जाहिर है, थोड़ा–बहुत अंतर बना रहता है। रेणु ने अपने एक लेख 'अपने अपने त्रिलोचन' के आखिर में लिखा है – "वह कौन–सी चीज है, जिसे त्रिलोचन में जोड़ देने पर वह शमशेर हो जाता है और घटा देने पर नागार्जुन ...?"[33] इस प्रश्न का जवाब जो भी हो पर इतना तो तय है कि इनके बीच दूरी से अधिक नज़दीकी है।

नागार्जुन का कवि बहुत ही ईमानदार है। वह प्यार करता है, लेकिन वह कभी अपने प्रिय से न तो झूठ बोलता है, न ही उससे झूठा वायदा करता है। उससे कोई छलावा नहीं करता। बड़ी साफगोई से अपना सच बयान करता है। नागार्जुन कठिन परिस्थितियों में संघर्षों के बीच हमेशा अपने प्रिय को याद करते हैं। अपने प्रिय से कोई दुराव, कोई दोहरापन उन्हें मंजूर नहीं। उनकी कविता 'इसलिए तू याद आए' की कुछ पंक्तियाँ –

"फिर यहाँ से और आगे बढ़ सकूँगा;
हिमालय के तुंग शिर पर चढ़ सकूँगा।
ये विकट पगडंडियाँ, ये झूलते पुल;
ये भयानक घाटियाँ, चिर–तुहिन संकुल।
सामने यह मृत्यु की प्रत्यक्ष छाया;
निबट लूँगा सभी से हे योगमाया !
साथ हो केवल मधुर मुस्कान तेरी;
ले सकेगा कौन जग में जान मेरी ?
दिवस हो दुर्दिवस, रातें हो अँधेरी;
परिस्थिति हो विषम, तो भी सजनि मेरी –
चाल धीमी कभी यह पड़ने न पाए;
चाहता हूँ इसलिए तू याद आए !"[34]

त्रिलोचन की एक कविता है –

"सचमुच, इधर तुम्हारी याद तो नहीं आई,
झूठ क्या कहूँ! पूरे दिन मशीन पर खटना,
बासे पर आकर पड़ जाना और कमाई
का हिसाब जोड़ना, बराबर चित्त उचटना।"[35]

नागार्जुन की एक कविता से इसकी तुलना की जा सकती है, जिसमें नागार्जुन प्रकृति के बीच होने पर अपने प्रिय को भूल जाते हैं – 'तब मैं तुम्हें भूल जाता हूँ' –

"पहन शुक्र का कर्णफूल जब
पीछे की नीरव घड़ियों में
रजनी को निखरा पाता हूँ
नील गगन के नक्षत्रों को
जब अविरल विखरा पाता हूँ
तब मैं तुम्हें भूल जाता हूँ।"[36]

त्रिलोचन प्रस्तुत दृश्य या वर्ण्य–प्रकृति में कुछ ऐसा देख लेते हैं जो इस विषय पर पहले किसी ने नहीं देखा हो। यही रचनाकार की खूबी है। क्योंकि रचना संभव होती है कवि की अपनी दृष्टि के अनुरूप। संवेदना और कल्पना कवि–दृष्टि में निहित होती है। सुन्दर फूलों के खिलने को सभी फूलों का हँसना कह सकते हैं पर त्रिलोचन इन्हें कल की चिन्ता छोड़कर हँसने वाला बताते हैं –

"हमने देखा कि फूल हँसते थे
डाल पर झूल झूल हँसते थे
पूछा, कल की भी कुछ खबर है क्या –
बात सब भूल–भूल हँसते थे।"[37]

त्रिलोचन को सहज सुन्दरता का कवि कहा जा सकता है। धूप का एक वर्णन है –

"धूप सुन्दर
धूप में
जग–रूप सुन्दर
सहज–सुन्दर –

... सघन पीली
उर्मियों में
बोर
हरियाली
सलोनी
झूमती सरसों
प्रकम्पित बात से
अपरूप सुन्दर
धूप सुन्दर।"[38]

सहजता का एक और भाव 'उस जनपद का कवि हूँ' में देखने लायक है –

"उस जनपद का कवि हूँ जो भूखा दूखा है,
नंगा है, अनजान है, कला – नहीं जानता।"[39]

त्रिलोचन की प्रकृति संबंधी कविताओं में सूक्ष्म पर्यवेक्षण (ऑब्जर्वेशन) है। इसीलिए चित्रण की अपेक्षा वर्णन अधिक हुआ है। बादल के अनेक रूप इनकी कविताओं में हैं –

"जो क्षण भर पहले
कपोताभ बादल थे उनमें कहीं सुनहले
कहीं रुपहले रंग आ गए। आवाजाही
कूजन करते हुए खगों की है।"[40]

"स्लेटी बादल आसमान को घेर घिरे हैं,
कहीं ज़रा सा रन्ध्र नहीं है। जब तब बूँदा –
बाँदी हो जाती है। फैल–फैल कर मूँदा
बदली ने नभ–नील–नयन को। उधर तिरे हैं
बादल के ऊपर बादल, चहुँ ओर फिरे हैं।"[41]

बादल का एक और वर्णन –

"निझरे झीने–झीने बादल सरक रहे हैं,
जैसे हलका धुआँ हो। ज़रा इनसे ऊपर
काले–काले स्थिर बादल हैं जैसे तट पर
धारा की छोड़ी मिट्टी।"[42]

जिस तरह से नागार्जुन ने प्रकृति से संवाद करते हुए कुछ कविताएँ लिखी हैं वैसी कविताएँ त्रिलोचन ने भी लिखी हैं। त्रिलोचन अपनी धुन में मगन होकर कहते हैं –

"चल रही हवा
धीरे धीरे
सीरी सीरी;
उड़ रहे गगन में
झीने झीने
कजरारे
चंचल
बादल !
छिपते दिपते
जब तब
तारे
उज्ज्वल, झलमन।
चाँदनी चमकती है गंगा बहती जाती है।"[43]

त्रिलोचन के काव्य के केन्द्र में है – देहाती जीवन, प्रकृति और बच्चे। देहाती जीवन में प्रकृति भी आती है। अपनी एक कविता 'बँसवाड़ी' में त्रिलोचन बाँस के बीच हवा बहने से उत्पन्न होने वाली सीटीनुमा आवाज़ को पहचानकर लिखते हैं –

"पवन
शाम बीतने पर
बँसवारी में
छिपकर आता है
रुक रुककर
बाँसुरी बजाता है।"[44]

आगे, रात की चुप्पी की तस्वीर है कि –

"तारे चुपचाप देखा करते हैं
पृथ्वी को

राहें उदास देखती हैं

आकाश को।"[45]

गँवई जीवन का सीधा–सादा सौन्दर्य इनके काव्य में बिखरा पड़ा है। बादल के अलावा प्रकृति के अन्य रूप पर्वत–पहाड़, हवा के झोंके, सिंदूरी शाम, चाँदनी आदि जैसे बड़े–बड़े दृश्य–रूपों के साथ–साथ कुछ छोटे रूपों को भी कवि ने छुआ है –

"काई हरियाई फिर
पी पीकर पानी
कुछ दिन की धूप ने
जलाकर इसे
स्याह बना दिया था।"[46]

त्रिलोचन का प्राकृतिक रूपों से अपनेपन का रिश्ता बहुत कुछ नागार्जुन जैसा ही है। नागार्जुन प्रकृति की एक–एक बात पर ध्यान रखे हुए हैं। तभी उन्हें कोयल का अबकी इस मौसम में अब तक नहीं बोलना खलता है। त्रिलोचन को आज मंजरी की गंध अपने पास बुलाती जान पड़ती है –

"बौरे आम तले
सुगंध मिली
मुझे आज
प्रातःकाल
यों उस सुगंध में
किसी के लिए
आमंत्रण नहीं था
फिर भी मुझे जान पड़ा
जाने क्यों
यह सुगंध मेरी है।"[47]

नामवर सिंह ने त्रिलोचन के बारे में सही कहा है कि –

> "यह त्रिलोचन ही हैं जो 'मेंहदी की अरघान' और 'करौंदी' की अरण्यनी' को रात गहराते ही महामोद लुटाते महसूस कर सकते हैं। अक्सर महसूस होता है कि त्रिलोचन प्रकृति को किसान की आँखों से देखते हैं – स्वतःस्फूर्त ! उस प्रकृति को जो मनुष्य के साथ उसके परिवार की तरह एकमेक हैं – दुख सुख की सहभागी।"[48]

आचार्य शुक्ल ने अपने निबंध 'काव्य में प्राकृतिक दृश्य' में लिखा है कि –

> "... जो सच्चा कवि है उसके द्वारा अंकित साधारण वस्तुएँ भी मन को तल्लीन करनेवाली होती हैं। साधारण के बीच में यथास्थान असाधारण की योजना करना सहृदय और कलाकुशल कवि का ही काम है।"[49]

आचार्य शुक्ल का यह कथन जितना त्रिलोचन के लिए सच है उतना ही नागार्जुन के लिए भी। नामवर सिंह ने तो मूलरूप से त्रिलोचन को 'साधारण' का असाधारण कवि कहा ही है। आचार्य शुक्ल इसी निबंध में एक स्थान पर लिखते हैं – "खेद के साथ कहना पड़ता है कि हिन्दी की कविता का उत्थान उस समय हुआ जब संस्कृत काव्य लक्ष्यच्युत हो चुका था। इसी से हिन्दी की कविताओं में प्राकृतिक दृश्यों का वह सूक्ष्म वर्णन नहीं मिलता जो संस्कृत की प्राचीन कविताओं में पाया जाता है।"[50] प्रगतिशील कवियों द्वारा लिखी गई प्रकृति संबंधी कविताओं को अगर शुक्ल जी ने देखा होता तो शायद उनको यह खेद कुछ कम हुआ होता। संस्कृत साहित्य के उत्कृष्ट प्रकृति काव्य के सबसे निकट हिन्दी काव्य का अगर कोई युग पड़ता है तो वह प्रगतिशील कविता का युग है। एक उदाहरण रखना चाहूँगा। त्रिलोचन की एक कविता की कुछ पंक्तियाँ –

"आठ पहर की टिप् टिप्

सड़क भीग गई है
पेड़ों के पत्तों से बूँदें
गिरती है टप् टप्,
हवा सरसराती है
चिड़ियाँ समेटे पंख यहाँ वहाँ बैठी हैं।"[51]

अब इसके समानांतर आदिकवि की कविता का शुक्ल जी द्वारा वर्णित अर्थ से इसकी तुलना की जाए, जिसमें वर्षा का ही एक दृश्य है –

"... पर्वत के ऊपर से पानी की मोटी धारा का काली शिलाओं पर गिरकर छितराना, पेड़ों पर गिरे वर्षा के जल का पत्तियों की नोकों पर से बूँद–बूँद टपकना और पक्षियों का उसे पीना ...।"[52]

जिस तरह से दोनों कविताओं में एक ही दृश्य के कई सूत्र आपस में बँधे हैं, एक–एक रेशा बहुत गहरे बंधा हुआ है – शुक्ल जी को बहुत प्रिय है। कारण कि, कवि का मुख्य कार्य ऐसे विषयो को सामने रखना है जो श्रोता के विविध भावों के आलंबन हो सकें। इन साधारण दृश्यों से हम सभी परिचित होते हैं और परिचय प्रेम का प्रवर्तक हुआ करता है।

नागार्जुन के समकालीन कवियों में प्रकृति को कविता का विषय बनाने वाले एक अत्यंत महत्वपूर्ण और अलग ढंग के कवि शमशेर बहादुर सिंह हैं। लेकिन प्रकृति को विषय बनाने के बावजूद भी नागार्जुन और शमशेर बहादुर सिंह की प्रकृति–चेतना एवं अंकन में महत्त्वपूर्ण अंतर है। शमशेर की प्रकृति संबंधी कविताओं का चरित्र चित्रात्मक है। कारण कि, कवि चित्रकला का भी उतना ही उपासक था जितना कविता का। खुद उन्हीं के शब्दों में –

"बचपन से मुझे शौक था चित्रकारी का। ... आप यकीन मानिए कि मैं ये फैसला नहीं कर सका मुद्दतों तक, और आज भी मेरे मन में यह सवाल उठता आया है कि मैं साहित्य में रहूँ, साहित्य रचना ही करूँ, कविता ही लिखूँ या चित्र बनाऊँ। ... रचना–प्रक्रिया जो चित्र में है, वही रचना–प्रक्रिया कविता में भी आएगी। ... यूरोप के जो चित्रकार थे और जो आंदोलन अति यथार्थवाद का वहाँ चला था, उसने बहुत गहराई से मुझको प्रभावित किया था और उन रूपों को मैंने अपने ढंग से कविता में पेश करने की कोशिश की।"[53] (साक्षात्कार, अगस्त 1981)

प्रकृति के कुछ रूप जैसे सुबह, शाम, बादल, वर्षा, पहाड़, आसमान, चाँदनी आदि शमशेर को अधिक लुभाते हैं। पर ये प्रिय रूप कविता में प्रायः बिम्बों के माध्यम से प्रकट हुए हैं। नागार्जुन की तरह का सीधे तौर पर प्रकृति का वस्तुपरक चित्रण इनके यहाँ न के बराबर है। कुल मिलाकर शमशेर की कविताओं में कहीं शिल्प का आग्रह, कहीं अमूर्तन, तो कहीं दुरूहता आम बात है।

शमशेर बहादुर सिंह अपने अनुभव को अपने भीतर बहुत गहराई में उतारकर उसे महसूस करते हैं और उसे ठीक वैसा ही महसूस करवाने की ख्वाहिश से उसे कविता में अपने शब्दों के जरिए उतारना चाहते हैं। इसी वजह से उनके यहाँ शब्द, शिल्प, छंद, लय, बिम्ब सभी का रंग जुदा है। सुबह का एक चित्र 'ऊषा' शीर्षक से –

"प्रात नभ था बहुत नीला शंख जैसे
भोर का नभ
राख से लीपा हुआ चौका
(अभी गीला पड़ा है)
बहुत काली सिल ज़रा से लाल केसर से

कि जैसे धुल गई हो
स्लेट पर या लाल खड़िया चाक
मल दी हो किसी ने
नील जल में या किसी की
गौर झिलमिल देह
जैसे हिल रही हो।
और ...
जादू टूटता है इस ऊषा का अब
सूर्योदय हो रहा है।"[54]

यह कविता अनुभूति को अधिक तराशने और निजी बनाने का एक अच्छा उदाहरण है। मुक्तिबोध के अनुसार शमशेर की मूल मनोवृत्ति एक इम्प्रेशनिस्टिक चित्रकार की है। वे बाहरी दुनिया के बीच के प्रभावपूर्ण दृश्यों–व्यापारों को शब्दों की कूँची से रंगते जाते हैं। उनके द्वारा रंगे गए चित्रों का मुख्य विषय सौन्दर्य रहता है। स्वयं कवि की राय है कि –

"सुन्दरता का अवतार हमारे सामने पल–छिन होता रहता है। अब यह हम पर है, खास तौर से कवियों पर, कि हम अपने सामने और चारों ओर की इस अनंत और अपार लीला को कितना अपने अंदर घुला सकते हैं।"[55]

शमशेर बहादुर सिंह की प्रकृति पर अनेक कविताएँ हैं। इन कविताओं की सामान्य प्रवृत्ति की ओर इशारा करते हुए विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने लिखा है –

"प्रकृति–चित्रों के साथ वे नारी के रूप–रंग को, उसके सलोने जिस्म को घुला–मिला देते हैं। ... वे प्रायः प्रकृति का प्रभावात्मक चित्र प्रस्तुत करते हैं और उसमें भी अपना अवसाद, अपनी पीड़ा, अपनी आकांक्षा, अपनी

प्रणयवासना आदि मिला देते हैं। फल यह होता है कि कुछ कविताओं में रोमैण्टिक प्रभाव बहुत तीखा हो जाता है।"[56]

उपरोक्त उद्धरण से शमशेर की प्रकृति संबंधी कविताओं पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। प्रकृति–चित्रण का यह रूप नागार्जुन के प्रकृति–चित्रण से सर्वथा भिन्न है। दरअसल, प्रगतिशील विचारधारा से जुड़े विभिन्न कवियों के प्रकृति–चित्रण में भिन्नता भी है। विचारधारा का आधार एक होने के बाद भी कविताओं की प्रकृति भिन्न है।

शमशेर की कविता में किसानों–मज़दूरों के जीवन–चित्र कवि के सामाजिक दायित्व की भावना को दर्शाते हैं –

"य शाम है
कि आसमान खेत है पके हुए अनाज का
लपक उठीं लहू – भरी दरातियाँ
– कि, आग है :
धुआँ धुआँ
सुलग रहा
ग्वालियर के मजूर का हृदय
... गरीब के हृदय
टँगे हुए
कि रोटियाँ लिए हुए निशान
लाल–लाल।"[57]

एक अन्य बहुत बड़ा अन्तर कविता की भाषा में देखा जा सकता है। नागार्जुन की प्रकृति संबंधित अधिकांश कविताओं की भाषा ठेठ देशी, आसान बोलचाल के शब्दों और गँवई जीवन से जुड़ी हुई है, जबकि शमशेर की कविता में लोकजीवन को चित्रित करने वाली शब्दावली नहीं है। इसका कारण यह है कि शमशेर अभिव्यक्ति और शिल्प के

प्रति अधिक जागरूक हैं जबकि नागार्जुन के यहाँ कविता के रूप के प्रति मोह लेशमात्र भी नहीं है।

शमशेर जी ने जो कविताएँ प्रकृति पर लिखी हैं वह प्रायः अनुभूति के एक खास क्षण की कविताएँ होती हैं –

"सूना सूना पथ है, उदास झरना
एक धुँधली बादल–रेखा पर टिका हुआ आसमान
जहाँ वह काली युवती
हँसी थी।"[58]

कवि शमशेर जीवन की सचाई और सौन्दर्य को सजीव से सजीव रूप देने को ही कलाकार का संघर्ष मानते हैं और साधना भी। नामवर सिंह के अनुसार – "शमशेर की प्रायः सभी कविताएँ एकालाप हैं – आंतरिक एकालाप।"[59] शमशेर की डायरी का एक हिस्सा प्रकृति–चित्रों से युक्त है। प्रकृति और जीवन की कई रूपरेखाएँ जो अभी आरंभिक अवस्था में हैं डायरी में बिखरी पड़ी हैं। प्रभाकर क्षेत्रिय ने उनकी डायरी के बारे में लिखा है कि –

"... लगता है प्रकृति ही उनकी अकेलेपन की सहचरी थी। बारिश, बादल, पर्वत–शृंखलाएँ, सुबह, शाम के ये आत्मानुभूति में रँगे चित्र कविता का–सा आस्वाद देते हैं। और कहीं कहीं तो स्वयं कविता या कविता के नोट्स जैसे लगते हैं। एक तारीख को केवल ये पंक्तियाँ लिखी गई हैं :

"नभ की सीपी जो रात्रि की कालिमा में पड़ी थी, धीरे–धीरे ऊषा की कोमल लहरों में घुलती और पसरती चली गई।"

यह उनकी इतनी ही छोटी कविता सुबह का पूर्व रूप है :

"जो कि सिकुड़ा हुआ बैठा था, वो पत्थर
सजग–सा होकर पसरने लगा
आप से आप।"[60]

शमशेर की कई रचनाओं के संकेत या नोट्स डायरी में मिल जाते हैं जैसे कोई चित्रकार तुरंत किसी दृश्य को देखकर उतावली से लैण्ड स्केप की आउट लाइन बना ले – रंग बेशक बाद में भरे।"[61]

सारांश कि शमशेर का अनुभव विधान और उसे सम्प्रेषित करने की पद्धति–प्रक्रिया निराली है। बिम्ब उनकी रचना–प्रक्रिया का प्राण तत्व है। दूधनाथ सिंह के शब्दों में – "उनकी कविता का हर शब्द अपने बिम्बात्मक प्रयोग के अंतिम छोर पर है। वे उसका सर्वस्व निचोड़ लेते हैं और किसी और कवि के लिए उसमें कुछ नहीं छोड़ते।"[62]

प्रगतिशील कवियों में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन शास्त्री, शमशेर बहादुर सिंह के अतिरिक्त मुक्तिबोध की भी थोड़ी चर्चा आवश्यक है। थोड़ी इसलिए कि उन्होंने अपनी कविता में प्रकृति–चित्रण किया ही नहीं है। फिर भी, प्रकृति उनकी कविता में मौजूद है। उसकी यह मौजूदगी 'प्रतीक' के रूप में है सर्वत्र। मुक्तिबोध ने प्रकृति के उन्हीं खास रूपों को चुना है जो 'भीतरी और बाहरी संघर्ष' को व्यक्त करने में सहायक हों, मसलन – कालागुलाब, काला जल, स्याम चमेली, गड्ढा, बावड़ी, खोह, गुहा, सूखा झरना, पथरीली गली, सुनसान, बियावान, पहाड़ी साँप, आदि के रूप कितने भिन्न हैं बताने की आवश्यकता नहीं है।

नागार्जुन के समकालीन कवि अज्ञेय ने प्रकृति को अपनी कई कविताओं में स्थान दिया है। नागार्जुन से भिन्न वैचारिक धरातल के कवि अज्ञेय के काव्य में आए प्रकृति–रूपों

की विवेचना से उस युग की प्रकृति–चेतना की मुकम्मल तस्वीर बनेगी। वस्तुतः अज्ञेय के काव्य में प्रकृति का स्वतंत्र निरूपण नहीं है। कहने के लिए भले ही 'हरी घास पर क्षण भर' हो पर है वह प्रेम की कविता। अज्ञेय के काव्य में प्रकृति एक उपकरण है कवि की अभिव्यक्ति का। वह आधारवस्तु नहीं बनी है। जाहिर है रूप, कला और सौन्दर्य को अपनी चेतना के केन्द्र में रखनेवाले कवि के यहाँ प्रकृति–वर्णन भी एक सजावटी सामान की तरह आएगा न कि जीवन की सचाई के रूप में या जनता के संघर्ष के साथ घुल–मिलकर। अज्ञेय के प्रकृति के प्रति आकर्षण का कारण उसका सुख की प्राप्ति का एक साधन होना है। प्रकृति के रूप जहाँ आए भी हैं प्रायः अमूर्त हैं। अज्ञेय अपनी मान्यता के अनुसार प्रकृति के विशिष्ट चित्रों को ही अंकित करते हैं :

"हाँ, शरद आया
ऊपर
खुली नीली झील –
तिरते बादलों के पाल।
हरे हरसिंगार।
तिनकों से ढले दो–चार
ओस–आँसू–कन।
खिली उजली धूप
नीचे
सिहर आया ताल।"[63]

आखिर में, कहा जा सकता है कि नागार्जुन अपने सभी समकालीन कवियों से भिन्न प्रकृति काव्य रचते हैं। इन्होंने ग्रामीण जीवन की प्रकृति को खूब ढंग से निरूपित किया है। प्रकृति के आलम्बनरूप पर अपने समकालीन कवियों में सर्वाधिक नागार्जुन ने ही लिखा है। इनकी प्रकृति संबंधी कविताएँ एक तरफ इनके जीवनानुभव से और दूसरी तरफ लोक हित की संवेदना से निर्मित हुई हैं।

संदर्भ–सूची

1 मैनेजर पाण्डेय, मेरे साक्षात्कार, पृ. 42

2 नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. 33–34

3 अजय तिवारी, नागार्जुन की कविता, पृ. 46

4 रतन कुमार पाण्डेय, नागार्जुन की काव्य यात्रा, पृ. 95

5 नागार्जुन, युगधारा, पृ. 110

6 नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. 158

7 नागार्जुन, इस गुब्बारे की छाया में, पृ. 17

8 नागार्जुन, हज़ार–हज़ार बाँहोंवाली, पृ. 181

9 वही, पृ. 114

10 भगवान तिवारी, नागार्जुन का काव्य : एक पड़ताल, पृ. 91–92

11 नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. 62

12 नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. 82

13 नागार्जुन, युगधारा, पृ. 85

14 नागार्जुन, हज़ार–हज़ार बाँहोंवाली, पृ. 104

15 वही, पृ. 77

16 वही, पृ. 114

17 नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. 49

18 त्रिलोचन, ताप के ताए हुए दिन, पृ. 18

19 केदारनाथ अग्रवाल, अपूर्वा, पृ. 13–14

20 केदारनाथ अग्रवाल, फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. 20–21

21 विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, समकालीन हिन्दी कविता, पृ. 67

22 केदारनाथ अग्रवाल, फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. 50

23 वही, पृ. 63

24 नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ. 35

25 केदारनाथ अग्रवाल, फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. 31

26 केदारनाथ अग्रवाल, फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. 154

27 वही, पृ. 5

28 वही, पृ. 17

29 वही, पृ. 57

30 देखें, केदारनाथ अग्रवाल, 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' की भूमिका

31 (सं.) केदारनाथ सिंह, प्रतिनिधि कविताएँ : त्रिलोचन, पृ. 6

32 त्रिलोचन, ताप के ताए हुए दिन, पृ. 15

33 महावीर अग्रवाल, त्रिलोचन : किंवदंती पुरुष, पृ. 394

34 नागार्जुन, भूल जाओ पुराने सपने, पृ. 76

35 त्रिलोचन, ताप के ताए हुए दिन, पृ. 54

36 नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ. 107

37 (सं.) गोबिन्द प्रसाद, त्रिलोचन के बारे में, पृ. 113

38 (सं.) केदारनाथ अग्रवाल, प्रतिनिधि कविताएँ : त्रिलोचन, पृ. 90–91

39 वही, पृ. 23

40 त्रिलोचन, शब्द, पृ. 23

41 वही, पृ. 24

42 त्रिलोचन, फूल नाम है एक, पृ. 77

43 (सं.) केदारनाथ अग्रवाल, प्रतिनिधि कविताएँ : त्रिलोचन, पृ. 96

44 त्रिलोचन, ताप के ताए हुए दिन, पृ. 16

45 वही, पृ. 16

46 वही, पृ. 35

47 वही, पृ. 19–20

48 (सं.) भरत यायावर, राजा खुगशाल, 'विपक्ष'–3

49 (सं.) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, चिंतामणि : द्वितीय भाग, पृ. 7

50 वही, पृ. 17

51 त्रिलोचन, ताप के ताए हुए दिन, पृ. 33

52 (सं.) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, चिंतामणि : द्वितीय भाग, पृ. 14

53 विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, समकालीन हिन्दी कविता, पृ. 27

54 शमशेर बहादुर सिंह, कुछ कविताएँ, पृ. 15

55 (सं.) अज्ञेय, दूसरा सप्तक, शमशेर : वक्तव्य से

56 विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, समकालीन हिन्दी कविता, पृ. 29

57 (सं.) नामवर सिंह, प्रतिनिधि कविताएँ : शमशेर, पृ. 41

58 वही, पृ. 20

59 वही, पृ. 5

60 शमशेर बहादुर सिंह, कुछ कविताएँ, पृ. 44

61 प्रभाकर क्षोत्रिय, शमशेर बहादुर सिंह, पृ. 99–100

62 दूधनाथ सिंह, लौट आ, ओ धार, पृ. 52

63 अज्ञेय, महावृक्ष के नीचे, पृ. 16

.....

अध्याय–4

उपसंहार

नागार्जुन के काव्य में प्रकृति के अनेक रूपों का चित्रण हुआ है। उनकी कविताओं में प्रकृति अपनी पूरी जीवंतता के साथ मौजूद है। नागार्जुन प्रकृति के किसी एक दृश्य पर ही लुभाने वाले और उसी पर काफी देर तक ठहर जाने वाले कवि नहीं हैं। उनके काव्य में प्रकृति के अनेक रूप इस तरह से व्यंजित हुए हैं, जैसे वे क्रमवार एक सूत्र में पिरोये गए हों। कवि की पैठ ग्रामजीवन से लेकर शहर के जीवन तक है। हाँ, यह जरूर है कि ग्राम का जीवन और ग्रामीण प्रकृति की सुषमा ही उन्हें विशेष आकर्षित करती है। इसी लिए उनकी कविताओं में अधिकतर प्रकृति का वह रूप है जो ग्रामीण जीवन में आम है। किसानी के अलावा भी ग्राम्य जीवन में प्रकृति का बहुत बड़ा स्थान है। पूजा अर्चना से लेकर छोटे बड़े अनेक कामों में रोज–ब–रोज आदमी का वास्ता प्रकृति से पड़ता है। इसी कारण शायद मानव व प्रकृति का संबंध आपरूप है। साहचर्य से जनित मानवेतर प्रेम का इससे अच्छा उदाहरण भला दूसरा क्या होगा।

नागार्जुन के सभी कविता–संग्रहों में प्रकृति–चित्रण से संबंधित कविताएं हैं। लेकिन इन कविताओं में प्रकृति के रूप अलग–अलग हैं। नागार्जुन की मुख्य विशेषता है कि वे प्रकृति के इन अलग–अलग रूपों का चित्रण भी अलग–अलग तरीके से करते हैं। इसके लिए वे भिन्न–भिन्न शैलियों का इस्तेमाल करते हैं। इसमें एक है – बातचीत करने की शैली, जिसमें आम घटनाएँ, दिनचर्या व रोज–ब–रोज दिखने वाली बातों को कवि ने कविता का विषय बनाया है। इस बातचीत की शैली में नागार्जुन ने प्रकृति के अपने सूक्ष्म निरीक्षण को भी ढाल दिया है। नागार्जुन से पहले शायद ही किसी ने ऐसी कविताएँ लिखी हों जिनमें प्रकृति का इतना सूक्ष्म निरीक्षण किया गया हो। आमतौर पर ऐसी कविताएं कविता के स्तर तक नहीं पहुंचतीं लेकिन उन्होंने ऐसी कविताओं को भी उत्कृष्ट काव्य की सीमा में पहुंचाया। ऐसा ही एक उदाहरण उनके अंतिम काव्य संग्रह से द्रष्टव्य है –

"जनवरी का प्रथम सप्ताह ...
खुशगवार दुपहरी धूप में
इत्मीनान से बैठा हूँ ...

अपने खेत में हल चला रहा हूँ
इन दिनों बुआई चल रही है
इर्द–गिर्द की घटनाएँ ही
मेरे लिए बीज जुटाती हैं।"

नागार्जुन की ऐसी कविताओं को पढ़कर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की वह वर्णन प्रणाली याद आती है जिसमें वे 'गप्प' के माध्यम से सहसा बड़ी और गंभीर बात कह देते हैं। नागार्जुन की कविताओं में भी बातचीत के क्रम में ऐसी तमाम चीजें आ जाती हैं जो बिल्कुल अपेक्षित नहीं होतीं। नागार्जुन की यह आदत कई बार कविता के ढाँचे का भी खयाल नहीं करती जैसे नीचे उद्धृत 'विकल है : व्याकुल है' कविता उदाहरणार्थ द्रष्टव्य है –

"पानी की सतह पर
सौ पचास भ्रमर
मचा रहे अविराम गुंजन
उनकी परेशानियाँ
देखते ही बनती हैं, सुनते ही बनती हैं ...
... हज़ार–हज़ार चाटुकार भ्रमरों को चाहिए
नेहरू खानदान का प्रफुल्ल कमल।"

यहाँ कविता लिखने का न कोई दबाव दिखाई पड़ता है और न ही जी तोड़ अभ्यास। कविता के शिल्प की भी उतनी परवाह नहीं है, जो मन में आता गया लिखते गए। यानी कविता में सजाव–शृंगार द्वारा आकर्षण या चमत्कार करने की कला नागार्जुन

ने नहीं सीखी। जैसे सादे में खुद थे वैसे ही सादी उनकी कविताएं नागार्जुन की कविताओं के संदर्भ में यह तथ्य विशेष रूप से ध्यातव्य है कि उनकी सादगी में मधुरता का अभाव कहीं नहीं मिलेगा। नागार्जुन की प्रकृति संबंधी कविताएँ सर्वसाधारण की समझ में भी आने वाली कविताएँ हैं। उनमें न ही कहीं कोई वक्रता है और न ही कहीं कोई कुण्ठा। ये कविताएं 'आधुनिक मानव के यौन वर्जनाओं की अभिव्यक्ति भी नहीं है और न ही उनमें किसी स्वातंत्र्य की तलाश है। ये कविताएँ थके–हारे मानव को सहारा देने वाली, मन के बोझ को हल्का कर देने वाली उल्लासपूर्ण रचनाएँ हैं। इनमें जीवन का संघर्ष है, आम जनता के जीवन को तरो–ताजा करने वाले अजस्र स्रोतों का उत्स भरा पड़ा है। 'कड़म का साग' और 'नीम की टहनी' ऐसे ही स्रोत हैं।

नागार्जुन के काव्य–जगत का एक बड़ा हिस्सा प्रकृति के प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से संबंधित है। इन कविताओं में प्रकृति आधारवस्तु के रूप में है। इन कविताओं में से कई कविताएँ समान भाव–भूमि पर लिखी गई हैं। यूँ तो प्रकृति के रूप अनेक हैं, लगभग अनगिनत। मोटे तौर पर उन प्रकृति–रूपों को जो नागार्जुन के काव्य में बार–बार आते हैं – एक वर्ग में रखकर विवेचित विश्लेषित करने की, उनके वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालने की कोशिश की गई है।

नागार्जुन की प्रकृति से संबंधित कविताओं का एक ऐसा वर्ग है जिसमें प्रकृति सिर्फ़ प्रकृति के रूप में है। यह प्रकृति का आलम्बन रूप है जो इनके पहले संस्कृत काव्य में बहुलता से मिलेगा। इस वर्ग की कविताओं का भी अपना अपना झुकाव है। कई कविताएँ प्रकृति के सीधे सादे और सहज रूपों पर हैं तो कुछ प्रकृति के सुन्दर, लुभावने और आकर्षक रूपों पर। इन कविताओं के साथ ही इस वर्ग में अनेक ऐसी कविताएँ आती हैं जिनमें प्रकृति का दृश्यात्मक वर्णन है – हू–ब–हू वैसा ही जैसा सामने है। इन कविताओं का खास वैशिष्ट्य यह है कि न तो इनमें सपाटबयानी है और न ही इतिवृत्तात्मकता। यह

बात कविता का पाठक आसानी से देख सकता है। कहीं–कहीं पर कवि प्रकृति रूपों से अभिभूत होकर एक संपूर्ण चित्र उतारता है, उसे मन में महसूस कर उल्लसित होता है। यहाँ प्रकृति–सौन्दर्य से जुड़ा उल्लास मिलेगा। इसी वर्ग की कुछ अन्य कविताओं में प्रकृति से कवि आदिम रूप में साक्षात्कार करता है। यहाँ उसके और प्रकृति के बीच कुछ भी नहीं है, कोई बाधा नहीं, कोई परदा नहीं। कवि और प्रकृति दोनों अपने मूल नैसर्गिक रूप में हैं।

नागार्जुन की प्रकृति संबंधी कविताओं का एक वह प्रकार, है, जहाँ कवि का प्रकृति के प्रति प्रेम प्रकट हुआ है। इसमें प्रकृति के वे रूप बार बार आते हैं जो उसे प्रिय हैं। इसके अलावा कुछ कविताओं में जीवन और प्रकृति का एकमेक रूप प्रकट हुआ है। प्रकृति से लगाव का आलम यहीं खत्म नहीं होता यह आगे मानव का शेष सृष्टि से रागात्मक संबंध स्थापित करता है। इन कविताओं में बार बार प्रकृति से नागार्जुन के आत्मीय संबंध को अभिव्यक्ति मिलती है। वे प्रकृति में खो जाते हैं, भूल जाते हैं खुद को भी।

प्रकृति संबंधित कविताओं को देखते हुए कई बार हम नागार्जुन की संवेदनशीलता से रू–ब–रू होते हैं। वे कई स्थलों पर प्रकृति से बातचीत करते हैं। इन कविताओं की संवादधर्मिता स्पष्टतया द्रष्टव्य है। एक भिन्न किस्म या शैली की प्रकृति–कविताओं में नागार्जुन ऐसी कविता लिखते हैं जो ऊपर–ऊपर देखने से वर्णन जैसी लगती है। पर यह वर्णन सतही कतई नहीं है इसके भीतर कवि ने गहरी पैठ लगाई है। नागार्जुन ने कुछ अत्यंत सुन्दर कविताएँ लिखी है जिनसे आँखों में प्रकृति का एक दृश्य बनता है। इन कविताओं की बिम्बधर्मिता आह्लादकारी है। नागार्जुन कई कविताओं में आवृत्तियाँ बहुत करते हैं। ऐसी आवृत्तियाँ लोकसाहित्य में होती हैं। लोकसाहित्य के अनेक शब्दों को नागार्जुन ने अपनाया है।

इन सबसे अलग किस्म की भी प्रकृति विषयक कुछ कविताएँ हैं। मसलन, प्रकृति के छोटे–छोटे गौण और अनछुए रूपों पर नागार्जुन ने बहुत लिखा है। इसी क्रम में वे कविताएँ भी आती हैं जो प्रकृति के परंपरागत रूपों को चुनौती देती हैं। इन कविताओं में प्रकृति के विद्रूप और त्याज्य समझे जाने वाले रूप हैं। इसके अतिरिक्त कुछ और प्रकार की कविताएँ हैं, पर इनकी संख्या कम है। मसलन, प्रकृति के असहज रूपों पर जैसे, उनकी एक अलग ढंग की कविता 'मृत्यु पर है। या फिर कहीं–कहीं प्रकृति में स्वयं की उपस्थिति का अंकन भी है और कहीं प्रकृति को बचाने का भाव भी मिलता है।

अब, बारी प्रकृति से हटने की है। कवि नागार्जुन ने प्रकृति को भिन्न आशय में भी प्रयुक्त किया है, यानी जहाँ प्रकृति, केवल प्रकृति नहीं है और एक अलग संदर्भ भी है। इसके जरिए उन्होंने अपनी राजनीतिक–सामाजिक चिंताएं प्रकट की हैं। जैसे 'तालाब की मछलियाँ' स्त्री मुक्ति की चेतना से संपन्न कविता है। ऐसी कविताओं में कहीं शोषण का चित्रण हैं तो कहीं सामंती व्यवस्था पर प्रहार है। इसी वर्ग की कविताओं में प्रकृति के जरिए मानवीय भावों की अभिव्यक्ति हुई है। इन कविताओं में कुछ लीक से हटकर भी है। जैसे – 'समझ गया मैं तेरी माया'। यहाँ प्रकृति पर आध्यात्मिक छाया है। यह परमसत्ता के प्रति आदर भाव है, किसी किस्म का रहस्यवाद नहीं है। यह जरूर है कि नागार्जुन के काव्य में ऐसे उदाहरण दुर्लभ हैं।

नागार्जुन का काव्य क्षेत्र विस्तृत है। वे केवल हिन्दी के ही कवि कथाकार नहीं हैं। मैथिलि, बांग्ला, संस्कृत आदि भाषाओं पर नागार्जुन का समान अधिकार था। उन्होंने इन भाषाओं में साहित्य सृजन भी किया है। नागार्जुन अपनी कविताओं का ताना–बाना व्यापक धरातल पर बुनते हैं। लोक से गहरी संपृक्ति उनकी कविताओं में लोकतत्व की सघन मौजूदगी का आधार बनती है। संस्कृत का ज्ञान उन्हें प्राचीन भारतीय परंपरा से जोड़े रहने

में मदद करता है। हिन्दी और इसके ठीक पीठ पीछे की भाषाओं – अपभ्रंश और पाली, का ज्ञान उनके कवि मानस की निर्मिति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस तरह नागार्जुन पूर्व परंपरा और वर्तमान के व्यापक सरोकारों से जुड़े हुए कवि हैं। यहाँ यह तथ्य विशेष रूप से ध्यातव्य है कि नागार्जुन ने सब कुछ परंपरा से ही ग्रहण नहीं किया है। वे संग्रह और त्याग की मनोवृत्ति वाले कवि हैं। उन्होंने विवेकपूर्वक परंपरा से प्रगतिशील तथ्यों को ग्रहण किया है और प्रतिगामी तथ्यों को छोड़ा है। इन सबके बावजूद नागार्जुन की कविताओं में अभिव्यक्त मूल स्वर उनका 'निजी' स्वर है।

.....

संदर्भ ग्रंथ–सूची

आधार ग्रंथ

1. नागार्जुन : युगधारा
   यात्री प्रकाशन, दिल्ली, 1982

2. नागार्जुन : सतरंगे पंखोंवाली
   वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1984

3. नागार्जुन : प्यासी पथराई आँखें
   अनामिका प्रकाशन, इलाहाबाद, 1982

4. नागार्जुन : तालाब की मछलियाँ
   लोकायन सांस्कृतिक संस्थान, भिण्ड, 1975

5. नागार्जुन : खिचड़ी विप्लव देखा हमने
   यात्री प्रकाशन, दिल्ली, 1999

6. नागार्जुन : तुमने कहा था
   वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988

7. नागार्जुन : हज़ार हज़ार बाँहोंवाली
   यात्री प्रकाशन, दिल्ली 1994

8. नागार्जुन : पुरानी जूतियों का कोरस
   वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1983

9. नागार्जुन : रत्नगर्भ
   वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1984

10. नागार्जुन : ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या !
    वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999

11. नागार्जुन : आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने
    वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1999

12. नागार्जुन : इस गुब्बारे की छाया में
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1989

13. नागार्जुन : भूल जाओ पुराने सपने
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1999

14. नागार्जुन : अपने खेत में
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1997

सहायक–ग्रंथ

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास
नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1997

2. (सं.) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : चिंतामणि : द्वितीय भाग
नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1996

3. नंददुलारे वाजपेयी : हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1995

4. नामवर सिंह : छायावाद
राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1998

5. नागार्जुन : मेरे साक्षात्कार
किताब घर, नयी दिल्ली, 2000

6. मैनेजर पाण्डेय : मेरे साक्षात्कार
किताब घर, नयी दिल्ली, 1998

7. त्रिलोचन : ताप के ताए हुए दिन
संभावना प्रकाशन, हापुड़, 1980

8. त्रिलोचन : गुलाब और बुलबुल
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1985

9. त्रिलोचन : शब्द
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1980

10. त्रिलोचन : धरती
नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1977

11. त्रिलोचन : उस जनपद का कवि हूँ
राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1981

12. मलयज : कविता से साक्षात्कार
संभावना प्रकाशन, हापुड़, 1976

13. शमशेर बहादुर सिंह : कुछ और गद्य रचनाएँ
राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1992

14. शमशेर बहादुर सिंह : टूटी हुई, बिखरी हुई
राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1997

15. शमशेर बहादुर सिंह : कुछ कविताएँ
प्रकाशक – जगत शंखधर, वाराणसी, 1959

16. शमशेर बहादुर सिंह : कुछ और कविताएँ
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1961

17. शमशेर बहादुर सिंह : चुका भी हूँ मैं नहीं
राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1975

18. शमशेर बहादुर सिंह : बात बोलेगी
संभावना प्रकाशन, हापुड़, 1981

19. शमशेर बहादुर सिंह : कहीं बहुत दूर से सुन रहा हूँ
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1995

20. (सं.) गोबिन्द प्रसाद : त्रिलोचन के बारे में
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1994

21. महेशप्रसाद शुक्ल : नागार्जुन की कविता में सौन्दर्यबोध का स्वरूप
सत्येन्द्र प्रकाशन, इलाहाबाद, 1999

22. मनीष झा : प्रकृति, पर्यावरण और समकालीन कविता
आनंद प्रकाशन, कोलकाता, 2004

23. (सं.) वाचस्पति पाठक : प्रसाद निराला पंत महादेवी की श्रेष्ठ रचनाएँ
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2001

24. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी : समकालीन हिन्दी कविता
राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1982

25. चन्द्रहास सिंह : नागार्जुन का काव्य
राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1996

26. (सं.) महावीर अग्रवाल : नागार्जुन : विचार सेतु
श्री प्रकाशन, दुर्ग

27. केदारनाथ अग्रवाल : अनहारी हरियाली
परिमल प्रकाशन, 1990

28. केदारनाथ अग्रवाल : फूल नहीं रंग बोलते हैं
परिमल प्रकाशन, 1965

29. (सं.) अशोक वाजपेयी : प्रतिनिधि कविताएँ : गजानन माधव 'मुक्तिबोध'
राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2000

30. परमानंद श्रीवास्तव : समकालीन कविता का यथार्थ
हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, 1988

31. रामस्वरूप चतुर्वेदी : हिन्दी काव्य संवेदना का विकास
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2003

32. अजय तिवारी : नागार्जुन की कविता
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1998

33. रतन कुमार पाण्डेय : नागार्जुन की काव्य–यात्रा
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1986

34. (सं.) केदारनाथ सिंह : प्रतिनिधि कविताएँ : त्रिलोचन
राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1996

35. (सं.) नामवर सिंह : प्रतिनिधि कविताएँ : शमशेर बहादुर सिंह
राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1998

36. भगवान तिवारी : नागार्जुन का काव्य : एक पड़ताल
भारत प्रकाशन, लखनऊ, 2000

37. प्रभाकर क्षोत्रिय : शमशेर बहादुर सिंह
साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली, 1997

पत्र–पत्रिकाएँ

1. (सं.) रामधारी सिंह दिवाकर : परिषद् पत्रिका
शोध और आलोचना – त्रैमासिक (नागार्जुन विशेषांक)
अप्रैल–मार्च, 1998

2. (सं.) सुभाष सेतिया : आजकल (नागार्जुन–स्मृति अंक)
प्रकाशन विभाग, नयी दिल्ली, जनवरी, 1999

3. (सं.) भारत यायावर/
राजा खुगशाल : विपक्ष–3
साहित्य कम्पोजिंग एजेंसी द्वारा नागरी प्रिंटर्स, दिल्ली
जनवरी, 1988

4. कल के लिए – दिसंबर, 1995
नागार्जुन पर परिसंवाद : आयोजक – अजय तिवारी